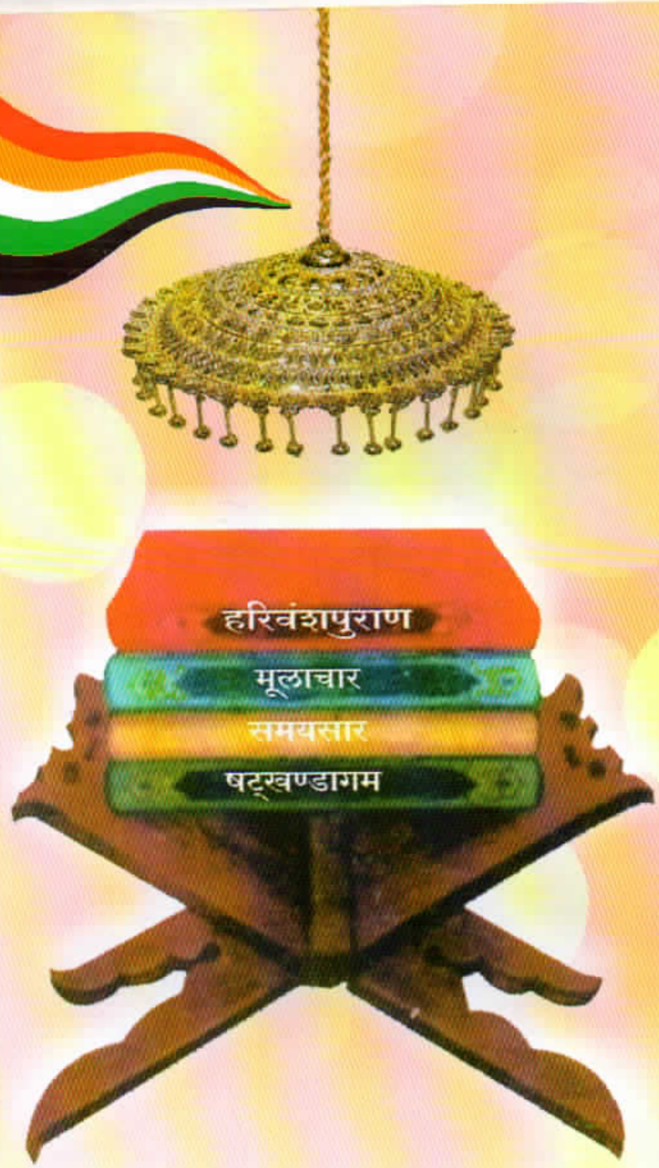

श्रमण संस्कृति सिद्धान्त प्रवेशिका

द्वितीय - भाग

- प्रकाशक -

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, जैन नशियां रोड़, सांगानेर, जयपुर (राज.)-302029

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

✲ ✲ ✲
आशीर्वाद
आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज
✲ ✲ ✲
प्रेरणा
निर्यापक श्रमण मुनिपुंगव
श्री 108 सुधासागर जी महाराज (ससंघ)
✲ ✲ ✲
कृति
श्रमण संस्कृति सिद्धान्त प्रवेशिका भाग-2
✲ ✲ ✲
सम्पादक
पं. रतन लाल बैनाड़ा
डॉ.शीतलचन्द्र जैन
✲ ✲ ✲
चौदहवां संस्करण : 2000
(संशोधित नवीन प्रति) अक्टूबर, 2020
✲ ✲ ✲
सह-सम्पादक
पं. प्रदीप कुमार जैन शास्त्री
✲ ✲ ✲
मूल्य
16/- रुपये (पुन: प्रकाशन हेतु)
✲ ✲ ✲
प्राप्तिस्थान:
भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षा बोर्ड
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
वीरोदय नगर जैन नशियाँ रोड
सांगानेर- 302 029 जयपुर (राज.)
फोन : 0141-2730552, 9314030108
ईमेल-ssspathshala@gmail.com
वेवसाइट-www.jainsharamansanskriti.org
✲ ✲ ✲
मुद्रक:
डिजिटल पैक एण्ड प्रिन्ट
बी11,शर्मा कॉलोनी एक्सटेंशन करतारपुरा
इंडस्ट्रियल एरिया, 22 गोदाम, जयपुर
फोन : 0141-4053939

कहाँ /क्या ?

खण्ड-अ

1. दर्शन-पाठ	1
2. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु	3
3. मिथ्यात्व	4
4. श्रावक के षट् आवश्यक कर्म	6
5. रत्नत्रय	8
6. षट् द्रव्य	10
7. तत्त्व एवं पदार्थ	12
8. उद्दायन राजा	14
9. भेदविज्ञान	15
10. पंचकल्याणक	17
11. समवसरण	19
12. जैन महापुरुष	20
13. श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी	22
14. अष्टाह्निका पर्व	24
15. जिनवाणी स्तुति (मिथ्यातम नासवे...)	26

खण्ड-ब

1. प्रार्थना	29
2. तीर्थंकर शान्तिनाथ	30
3. चार प्रकार का दान	31
4. चौका-शुद्धि	32
5. अभक्ष्य	34
6. दशलक्षण एवं सोलहकारण पर्व	36
7. तीर्थंकर नेमिनाथ	39
8. बारह भावना (राजा राणा)	41
9. सेठ सुदर्शन	42
10. दर्शन स्तुति	44
11. रेवती रानी	45
12. चार अनुयोग	47
13. हमारे प्रमुख जैन तीर्थ	48
14. जम्बूस्वामी	49
15. जिनवाणी स्तुति (साँची तो गंगा ... चरणों में ...)	50

आभार

इस कृति में जिन मुनिराजों, त्यागी व्रतियों, मनीषियों एवं विद्वानों की रचनाओं को समावेशित किया गया है और जिन महत्त्वपूर्ण पुस्तकों, कृतियों, ग्रंथों से श्रमपूर्वक सामग्री का चयन प्रत्यक्षतः परोक्षतः किया गया है-उन सबके प्रति मैं अपने हृदय के गहनातिगहन तल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सम्पादक

खण्ड–अ

पाठ–1

दर्शन–पाठ

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ।।1।।

अर्थ–देवाधिदेव जिनेन्द्र देव का दर्शन पापों का नाश करने वाला है, स्वर्ग जाने के लिये सीढ़ी के समान तथा मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।। 2।।

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से तथा साधुओं की वंदना करने से, पाप बहुत समय तक नहीं ठहरते। जैसे–अंजुली में छिद्र होने से पानी नहीं ठहरता।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मराग समप्रभम्।
जन्मजन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।।3।।

अर्थ– पद्मराग मणि के समान शोभनीक श्री वीतराग भगवान का दर्शन करने से अनेक जन्मों के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त नाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम्।। 4।।

अर्थ–सूर्य के समान जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से, संसार रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है, चित्तरुपी कमल खिलता है और सर्वपदार्थ प्रकाश में आते हैं अर्थात् जाने जाते हैं।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृत–वर्षणम्।
जन्म–दाह–विनाशाय, वर्धनं सुख–वारिधेः।।5।।

अर्थ–चन्द्रमा के समान श्री जिनेन्द्र देव का दर्शन करने से सत्यधर्म रूपी अमृत की वर्षा होती है, संसार के दुःखों का नाश होता है और सुख रूपी समुद्र की वृद्धि होती है।

जीवादि – तत्त्व – प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व – मुख्याष्ट – गुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।6।।

अर्थ– जो जीवादि सप्त तत्त्वों को बताने वाले हैं, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के समुद्र हैं, शान्तरूप तथा दिगम्बर हैं, ऐसे देवाधिदेव जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ।।7 ।।

अर्थ–जो ज्ञानानंद एक स्वरूप वाले हैं, अष्टकर्मों को जीतने वाले हैं, परमात्म स्वरूप हैं, ऐसे सिद्ध आत्मा को अपने परमात्म स्वरूप के प्रकाशित होने के लिए नित्य नमस्कार हो।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।8।।

अर्थ–आपकी शरण के अलावा संसार में मेरे लिए कोई शरण नहीं है, आप ही शरण हैं, इसलिए करुणाभाव करके, हे जिनेन्द्रदेव! भगवान ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।9।।

अर्थ–तीनों लोकों में कोई अपना रक्षक नहीं है, रक्षक नहीं है, रक्षक नहीं है (यदि कोई रक्षक है तो वे वीतराग देव आप ही हैं) क्योंकि आपसे बड़ा न तो कोई देव हुआ है और न ही भविष्य में कभी होगा।

जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति-र्दिनेदिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे।।10।।

अर्थ–मैं यह आकांक्षा करता हूँ कि जिनेन्द्र भगवान् के प्रति मेरी भक्ति प्रतिदिन और प्रत्येक भव में बनी रहे।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः।।11।।

अर्थ–जिनधर्म रहित चक्रवर्ती होना भी अच्छा नहीं है, जिनधर्म धारी, दास तथा दरिद्री हो तो भी अच्छा है।

जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जन्ममृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिन-दर्शनात्।12।।

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से करोड़ों जन्मों के एकत्रित हुये पाप तथा जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु एवं रोग अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

अद्या-भवत् सफलता नयन-द्वयस्य, देव ! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक - तिलक प्रतिभासते मे, संसार-वारिधि - रयं चुलुक-प्रमाणः ।।13।।

अर्थ–हे देवाधिदेव! आपके कल्याणकारी चरण कमलों के दर्शन से मेरे दोनों नेत्र आज सफल हुए। हे तीनों लोकों के तिलक स्वरूप आपके प्रताप से, मेरा संसार रूपी समुद्र, हाथ में लिये गये चुल्लू भर पानी के समान प्रतीत होता है, अर्थात् आपके प्रताप से मैं सहज ही संसार समुद्र से पार हो जाऊँगा।

पाठ–2

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु

देव का लक्षण – जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं, वे सच्चे देव कहलाते हैं। अरिहन्त, तीर्थंकर, जिनेन्द्र, परमात्मा और परमेश्वर आदि सच्चे देव के नामान्तर हैं।

वीतराग का लक्षण–जो किसी वस्तु या प्राणी से राग (प्रेम) तथा द्वेष (बैर) नहीं करता,सबको सम दृष्टि से (बराबर) देखता है तथा जिसमें अठारह दोष नहीं होते हैं, उसे वीतराग कहते हैं।

सर्वज्ञ का लक्षण– जो कुछ हो चुका है, अब हो रहा है और जो कुछ आगे होगा, उन सबको प्रत्येक समय जो जैसा का तैसा प्रत्यक्ष जानता है, वह सर्वज्ञ कहलाता है। संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसे सर्वज्ञ नहीं जानते हों।

हितोपदेशी का लक्षण–जो सब जीवों (प्राणियों) को हित (संसार से पार होने) का उपदेश देता है, उसे हितोपदेशी कहते हैं।

शास्त्र का लक्षण–जो सच्चे देव का कहा हुआ होता है, जिसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं होता है,जो खोटे मार्ग का नाश करता है और जिसके पढ़ने, सुनने से जीवों का कल्याण होता है, वह शास्त्र कहलाता है। जिनागम, जिनवाणी, जैनशासन, वीरशासन, भगवद्वाणी आदि सच्चे शास्त्र के नामान्तर हैं।

गुरु का लक्षण– जो इन्द्रियों के विषयों की चाह नहीं रखते, आरम्भ नहीं करते, परिग्रह नहीं रखते तथा ज्ञान, ध्यान व तप में लीन तथा पापों से दूर रहते हैं, उन्हें सच्चा गुरु कहते हैं।

गुरु के नामान्तर–ऋषि, मुनि,यति, तपस्वी, योगी, साधु और दिगम्बर आदि गुरु के नामान्तर हैं। अपने शिक्षक को शिक्षा गुरु कहा जाता है और साधु, मुनि को सच्चा गुरु कहा जाता है।

शिक्षा–इस प्रकार सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का स्वरूप जानकर सदा ही उनकी भक्ति, पूजा और सेवा करनी चाहिए, किन्तु रागी, द्वेषी, मिथ्या देवों व साधुओं को कभी भी नहीं पूजना चाहिए। अनाचार, शिथिलता तथा विषय कषाय बढ़ाने वाले मिथ्या शास्त्र भी नहीं पढ़ने चाहिए

अभ्यास प्रश्न

1. सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का लक्षण लिखिए।
2. सच्चे देव तथा शास्त्र के नामान्तर लिखिए।
3. फिल्मी उपन्यास और कहानियाँ ये सच्चे शास्त्र हैं या नहीं ?
4. सर्वज्ञ किसे कहते हैं ?
5. इस पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ-3

मिथ्यात्व

तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान नहीं होना ही मिथ्यात्व है अथवा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान न करना या झूठे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। विपरीत या गलत धारणा का नाम मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के उदय से जीव को सच्चा धर्म नहीं रुचता है। जैसे-पित्त के रोगी को दूध भी कड़वा लगता है।

मिथ्यात्व के दो भेद होते हैं-गृहीत एवं अगृहीत।

गृहीत मिथ्यात्व-पर के उपदेश आदि से कुदेवादि में जो श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यात्व- अनादिकाल से किसी के उपदेश के बिना शरीर को ही आत्मा मानना व पुत्र, धन आदि में अपनत्व करना, अगृहीत मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के पाँच भेद भी होते हैं।

(1) **विपरीत**-जीवादि पदार्थों में विपरीत मान्यता एवं अधर्म को धर्म मानना ही विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे-शरीर को ही आत्मा मानना।

(2) **एकान्त**-जीवादि पदार्थों में पाये जाने वाले अनेक धर्मों में से एक धर्म को ही स्वीकार करना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे-पदार्थ को नित्य ही मानना।

(3)**विनय**-सच्चे देव, शास्त्र, गुरु एवं अन्य मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु को समान मानना विनय मिथ्यात्व है। जैसे-अरिहंत देव तथा अन्य देवों की समान विनय करना।

(4) **संशय**-सद्-असद् धर्म में सच्चे धर्म का निश्चय नहीं होना संशय मिथ्यात्व है। जैसे-स्वर्ग-नरक होते भी हैं या नहीं।

(5) **अज्ञान**-जीवादि पदार्थों के समझने का प्रयास न करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

इस तरह सामान्य से मिथ्यात्व के पाँच भेद हैं। आगम में अधिक भेद करने से 363 भेद भी वर्णित हैं अथवा विस्तार से असंख्यात लोक प्रमाण भेद भी कहे जाते हैं।

भारतवर्ष में अनेक राजा हुए हैं। उनमें से एक राजा धनदत्त कानपुर में राज्य करता था। राजा धनदत्त का मन्त्री श्रीवंदक बौद्ध धर्म का अनुयायी था। एक दिन राजा एवं मंत्री दोनों राजमहल की छत पर विचार-विमर्श कर रहे थे। अकस्मात् आकाश मार्ग से आते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज दिखे। राजा ने वन्दना करके उन्हें काष्ठासन पर विराजमान होने का अनुरोध किया।

मुनिराज ने वहीं पर धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर श्रीवंदक मंत्री ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। उस दिन मन्त्री अपने बौद्ध गुरुओं की वन्दना के लिए नहीं गया। यह देखकर बौद्ध गुरुओं ने उसे बुलाया फिर भी उसने वन्दना नहीं की और सारी बातें सुना दी। बौद्ध संघ के गुरुओं ने उसे अनेकों उपदेश देकर वापस बौद्ध धर्मी बना लिया। श्रीवंदक फिर संघ की मीठी-मीठी बातों में आ गया और सम्यक्त्व से विचलित हो गया।

दूसरे दिन राजसभा में राजा ने बड़े हर्षोल्लास से चारण ऋद्धिधारी मुनियों के आने का समाचार सभी प्रजाजनों को सुनाया। उनमें से कुछ लोग आश्चर्य से राजा की तरफ देख रहे थे। राजा ने अपनी बात के समर्थन के लिए मंत्री से कहा 'मंत्री जी! कल मध्यान्ह की घटना के शुभ समाचारों से सभा को अवगत कराईये।' मंत्री ने कहा–'महाराज! मैंने तो ऐसे किसी भी मुनि को नहीं देखा और यह बात सम्भव नहीं कि कोई मनुष्य आकाश में (गमन कर) चल सके'। पापी श्रीवंदक का इतना कहना ही था कि उसी समय उसकी दोनों आँखें मुनि निन्दा और मिथ्यात्व से फूट गयी। इस घटना को देखकर राजा और प्रजाजनों ने जिनधर्म की खूब प्रशंसा की और सभी सभासदों ने मिथ्यात्व का दुष्परिणाम देखकर जैनधर्म को धारण कर लिया।

शिक्षा–अनादिकाल से मिथ्यात्व में फँसे होने के कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है अतः हमें इसको छोड़ना चाहिए। मिथ्यात्व वह दावाग्नि है जो कि हमारी मानव रूपी श्रेष्ठ पर्याय को भस्म (नष्ट) कर रही है। इसलिए हमें शीघ्र ही मिथ्यात्व को नष्ट करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. मिथ्यात्व किसे कहते हैं?
2. गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व में क्या अन्तर है?
3. मिथ्यात्व के पाँच भेद कौन–कौन से हैं ?
4. विपरीत और एकान्त मिथ्यात्व का लक्षण लिखिए।
5. मिथ्यात्व के अधिक से अधिक कितने भेद हो सकते हैं, विनय मिथ्यात्व क्या हैं ?

पाठ–4

श्रावक के षट् आवश्यक कर्म

प्रत्येक मानव सुख शान्ति चाहता है और सुख शान्ति धर्म कार्य से प्राप्त होती है। अतः धर्म कार्य करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये परमावश्यक है। हमें मनष्य जन्म की प्राप्ति महान पुण्योदय से हई है. इसमें भी आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, निरोगी काया, सत्पुरुषों की संगति आदि उत्तम निमित्त मिलने पर भी जो दान पूजादि षट् आवश्यक कार्यों को नहीं करता है, उसे आचार्यों ने पशु के समान माना है। इसलिए प्रत्येक श्रावक को षट् आवश्यक कार्यों को परमावश्यक समझकर प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए, जिससे इस भव में और पर भव में सुख शान्ति की प्राप्ति हो।

षट् आवश्यक के नाम इस प्रकार हैं:

देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्यायःसंयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने–दिने ।।

देवपूजा, गुरु–उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट् आवश्यक कर्म प्रत्येक गृहस्थ को नित्य करना चाहिए

देवपूजा

मन–वचन–काय से भगवान् जिनेन्द्र के गुणों का विशेष रूप से चिन्तन –मनन करना देवपूजा कहलाती है। इसके लिये सर्वप्रथम छने हुये प्रासुक जल से स्नान कर, शुद्ध धुले हुये धोती–दुपट्टा पहनना चाहिए, श्री जी के अभिषेक व सामग्री धोने के लिये जल कुंए का ही काम में लेना चाहिए।

सर्वप्रथम जिनेन्द्र देव का अभिषेक करके अष्द्रव्य का थाल सजाकर, विनय पूर्वक, सर्वप्रथम णमोकार मंत्र, स्वस्ति मंगल पाठ बोलकर अपनी इच्छा से देव–शास्त्र–गुरु आदि की पूजन, आह्वान–स्थापना–सन्निधिकरण करते हुये क्रमशः जलादि अष्टद्रव्यों के छन्द पढ़कर द्रव्य चढ़ाते जाना चाहिए तत्पश्चात् शेष अर्घ चढ़ाने के बाद शान्तिपाठ व विसर्जन करना चाहिए इसके बिना पूजा अधूरी रहती है। पूजा के 6 अंग है– 1.अभिषेक 2. आह्वाननम् 3. स्थापन 4. सन्निधिकरण 5. पूजन 6. विसर्जन।

गुरु उपासना

समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि तथा ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिकादि व्रती– त्यागियों का विनय के साथ उपदेश सुनना, उनकी सेवा सुश्रुषा करना, उनकी आवश्यकता के अनुसार उनको पीछी, कमण्डलु, शास्त्रादि उपकरण देना, विधि पूर्वक यथायोग्य नवधाभक्ति से शुद्ध आहार कराना आदि गुरु–उपासना कहलाती है।

स्वाध्याय

श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुये और गणधरों द्वारा निरूपित तथा आचार्यों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना, पूछना–बताना, चिन्तन–मनन करना, चर्चा करना स्वाध्याय कहलाता है।

संयम

अपने मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना संयम कहलाता है। संयम दो प्रकार का होता है–इन्द्रिय संयम, प्राणी संयम। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में करना इन्द्रिय संयम कहलाता है। दयाभाव से षट्काय(स्थावर जीव के पाँच भेद हैं–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक) के जीवों का घात नहीं करना प्राणी संयम कहलाता है।

तप

अपनी इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है। छह अन्तरंग और छह बहिरंग की अपेक्षा तप के बारह भेद होते हैं।

बाह्य तप के छह भेद हैं–

1. अनशन 2. अवमौदर्य 3. वृत्तपरिसंख्यान 4. रसपरित्याग 5. कायक्लेश 6. विविक्त–शयनासन।

अभ्यंतर तप के छह भेद हैं–

1.. प्रायश्चित्त 2. विनय 3. वैयावृत्य 4. स्वाध्याय 5. ध्यान6. व्युत्सर्ग।

इनको अपनी शक्ति अनुसार नित्य करना चाहिए।

दान

मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका को निज और पर के कल्याण के लिये, चार प्रकार के दान में अपने धन का त्याग दान कहलाता है। दीन दुखियों की भी आवश्यकतानुसार सहायता करना करुणा दान कहलाता है।

दान के चार भेद हैं– 1. आहार दान 2. ज्ञान दान 3. औषधि दान 4. अभय दान

अभ्यास प्रश्न

1. श्रावक के षट् आवश्यकों के नाम बताइए।
2. देवपूजा किसे कहते हैं ? देवपूजा करने की विधि बताइए।
3. स्वाध्याय किसे कहते हैं ?
4. दान किसे कहते हैं ? कितने प्रकार का होता हैं ?
5. इन्द्रिय संयम किसे कहते हैं ?

पाठ–5

रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन का लक्षण व भेद

सच्चे श्रद्धान (विश्वास या यकीन) को सम्यग्दर्शन कहते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन ये दो सम्यग्दर्शन के भेद हैं।

आत्मा का जैसा का तैसा परद्रव्यों से भिन्न श्रद्धान (विश्वास) निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है। सच्चे देवशास्त्र–गुरु, दयामयधर्म और सातों तत्त्वों का सच्चे दिल से यथार्थ श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और आवश्यकता

सम्यग्दर्शन धर्मरूपी पेड़ की जड़ है। जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहरता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सब धर्मकर्म व्यर्थ होते हैं, उनसे कुछ अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए आत्म–कल्याण के लिए सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्यग्दर्शन की महिमा

जिस प्राणी को सम्यग्दर्शन हो जाता है, वह मरने पर स्वर्ग का देव या भोगभूमि में मनुष्य गति में उत्पन्न होता है, स्त्री नहीं होता, पहले नरक को छोड़ अन्य छह नरकों में नहीं जाता, भवनत्रिक, स्थावर, विकलत्रय, पशु, नपुंसक, अल्पायु, गरीब, हीनाङ्ग, पक्षी और नीचकुली भी नहीं होता।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण व भेद

ठीक–ठीक जैसा का तैसा जानना, किसी प्रकार का संशय नहीं होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यग्ज्ञान ये दो सम्यग्ज्ञान के भेद हैं।

आत्मा को जैसा का तैसा पर द्रव्यों से भिन्न जानना, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है। पदार्थों के स्वरूप को ठीक–ठीक जैसा का तैसा जानना, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं होना, व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और आवश्यकता

सम्यग्ज्ञान होने के पहले जो ज्ञान मिथ्या होता है, सम्यग्दर्शन होने पर वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। सम्यग्ज्ञान से ही आत्मज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा

सम्यग्ज्ञान होने पर त्रिगुप्ति (मन, वचन, काय की एकाग्रता) से जन्म–जन्म के पाप कट जाते हैं, जो पाप अज्ञानी प्राणियों के करोड़ों जन्मों तक तप करने पर भी नहीं कटते।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का उपाय

सच्चे शास्त्रों को पढ़ने, पढ़ाने, सुनने, सुनाने तथा बार–बार विचारने, आत्मचिन्तन करने, पाठशाला खुलवाने, शास्त्रदान करने या छात्रवृत्ति देने आदि से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यक् चारित्र का लक्षण व भेद

अशुभ कार्यों को छोड़ना, शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना सम्यक् चारित्र कहलाता है। निश्चय सम्यक् चारित्र और व्यवहार सम्यक् चारित्र ये दो सम्यक् चारित्र के भेद हैं। आत्मस्वरूप में लीन होना, निश्चय सम्यक् चारित्र कहलाता है। हिंसा,

झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों तथा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का त्याग करना, व्यवहार सम्यक् चारित्र कहलाता है।

सम्यक् चारित्र की प्राप्ति का उपाय

वीतरागी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं की संगति करने, दान देने, वैय्यावृत्ति आदि करने तथा व्रत, समिति, गुप्ति, तप, धर्म आदि करने से सम्यक् चारित्र प्राप्त होता है। इस सम्यक् चारित्र से ही संवर व निर्जरा होती है।

रत्नत्रय और मोक्षमार्ग

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, इन तीनों की ही एकता को मोक्षमार्ग कहते हैं। यथार्थ में यही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

शिक्षा

संसार के दुःखों से छूटने का सच्चा उपाय रत्नत्रय ही है, अतः हमको रत्नत्रय धारण करना चाहिए हमारे मनुष्य जन्म की सफलता भी इसी में है। रत्नत्रय को धारण करने वाले व्रती, श्रावक या मुनि होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. रत्नत्रय किसे कहते हैं ? भेद बताइए।
2. रत्नत्रय प्राप्ति का उपाय बताइए।
3. रत्नत्रय और मोक्षमार्ग में क्या अन्तर है ?
4. इस पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ-6

षट् द्रव्य

द्रव्य का लक्षण – जिसमें गुण और पर्याय होते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं अथवा जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं।

द्रव्य के भेद – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। इनमें जीव द्रव्य को छोड़कर पाँच द्रव्य अजीव हैं।

जीव द्रव्य – जिसमें जानने-देखने की शक्ति होती है, उसे जीव कहते हैं। जैसे- देव, मनुष्य, नारकी, पशु आदि।

पुद्गल द्रव्य – जिसके परमाणु मिलते और बिखरते हैं अथवा जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होता है, और जो कुछभी हमारे देखने में आता है,उसे पुद्गल कहते हैं। जैसे पुस्तक, कलम, परमाणु, गोली, पारा आदि

परमाणु – पुद्गल के सबसे छोटे (अविभागी) टुकड़े को परमाणु या अणु कहते हैं। वह इतना छोटा (बारीक) होता है कि रूपवान (रूपी या मूर्तिक) होने पर भी हमें दिखाई नहीं देता।

स्कन्ध – दो या दो से अधिक मिले हुए पुद्गल परमाणुओं को स्कन्ध कहते हैं। जैसे-गोलियां, चूरण, चटनी आदि।

पुद्गल द्रव्य की पर्याय– शब्द, बन्ध, स्थूलता, सूक्ष्मता, आकार, हिस्सा, अन्धकार, परछाईं, प्रकाश, चांदनी और धूप ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

धर्म द्रव्य – जो द्रव्य स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गलों को चलने या उड़ने में उदासीन रूप से मदद करता है, तथा ठहरे हुए को चलाता नहीं है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे जल मछली को चलने तथा हवा पतंग को उड़ने में सहायक होती है। यदि धर्मद्रव्य नहीं होता तो जीव और पुद्गल चल नहीं सकते।

अधर्म द्रव्य – जो द्रव्य स्वयं ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक होता है, वह अधर्मद्रव्य कहलाता है। जैसे वृक्ष की छाया थके हुये मुसाफिर को ठहरने में सहायक होती है। यदि अधर्मद्रव्य नहीं होता तो जीव और पुद्गल ठहर नहीं सकते।

आकाश द्रव्य –जो द्रव्य समस्त द्रव्यों को ठहरने के लिये स्थान देता है, उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। यदि आकाश द्रव्य नहीं होता तो किसी वस्तु को रहने के लिये जगह नहीं मिलती। लोकाकाश (लोक) और अलोकाकाश (अलोक) ये दो आकाश द्रव्य के भेद हैं।

लोकाकाश–जितने स्थान में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य रहते हैं, उतने आकाश या स्थान को लोकाकाश या लोक कहते हैं।

अलोकाकाश–जिस स्थान में केवल आकाश ही आकाश है, अन्य कोई द्रव्य नहीं है, उसे अलोकाकाश या अलोक कहते हैं।

काल द्रव्य – अपनी–अपनी पर्याय रूप से स्वयं परिणमित होते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं। निश्चयकाल और व्यवहारकाल ये दो कालद्रव्य के भेद हैं।

निश्चय काल –जो स्वयं पलटता है तथा स्वयं पलटते हुए अन्य द्रव्यों के पलटने (परिणमन करने) में कुम्हार के चाक की कील के समान सहायक होता है, उसे निश्चयकाल कहते हैं।

व्यवहार काल–घड़ी, घण्टा, दिन, सप्ताह, पक्ष और मास आदि को व्यवहारकाल कहते हैं।

विशेष–

1. बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है, क्योंकि उसका प्रत्येक अणु अलग–अलग रहता है। शेष पाँच द्रव्य एक अणु से अधिक जगह घेरते हैं, इससे वे अस्तिकाय हैं।
2. धर्म और अधर्म द्रव्य, जीव तथा पुद्गल को प्रेरित कर नहीं चलाते या ठहराते हैं, किन्तु जब वे चलते या ठहरते हैं तब उनको मदद अवश्य देते हैं।
3. ये छह द्रव्य समस्त लोक में व्याप्त हैं, फिर भी एक दूसरे के रहने में बाधक नहीं होते।
4. पुद्गल द्रव्य को छोड़कर शेष द्रव्य दिखाई नहीं देते क्योंकि वे रूप रहित (अरूपी) या अमूर्तिक हैं।
5. धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य एक–एक ही हैं। इनके हिस्से या भेद नहीं होते।
6. धर्म और अधर्म से यहाँ पुण्य और पाप नहीं समझना, किन्तु षड्द्रव्यों के अन्तर्गत द्रव्ये समझना चाहिए। अन्यत्र धर्म और अधर्म का अर्थ शुभाशुभ कर्म का फल पुण्य और पाप जानना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. द्रव्य किसे कहते हैं ?

2. छह द्रव्यों के नाम बताओ ?

3. पुद्गल द्रव्य किसे कहते है, इसकी पर्यायें बतायें ?

4. धर्म द्रव्य जीव और पुदगल को किस प्रकार की सहायता देता है ?

5 अलोकाकाश में कौन–कौन से द्रव्य रहते हैं ?

6. हम कहाँ रहते हैं लोकाकाश में या अलोकाकाश में ?

पाठ–7

तत्त्व एवं पदार्थ

तत्त्व

जिनके जानने या श्रद्धान करने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके और हम अपनी आत्मा को पवित्र कर सकें, ऐसे वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं।

तत्त्वों के भेद

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, इनमें पुण्य और पाप मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

1. **जीव** – जिसमें चेतना पायी जाती है, उसे जीव कहते हैं।
2. **अजीव** – जिसमें चेतना नहीं पायी जाती है, उसे अजीव कहते हैं।
3. **आस्रव** – रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आत्मा में आने वाले कर्मों के द्वार को आस्रव कहते हैं।
4. **बन्ध** – रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ दूध और जल के समान मिलकर एकमेक हो जाना, बन्ध कहलाता है।
5. **संवर** – आस्रव का न होना अर्थात् आते हुए कर्मों का रुकना, संवर कहलाता है।
6. **निर्जरा** – आत्मा के साथ बद्ध कर्मों का एकदेश (थोड़ा भाग) क्षय हो जाना, निर्जरा कहलाता है।
7. **मोक्ष** – ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का क्षय होकर आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना, मोक्ष कहलाता है।

सात तत्त्वों का उदाहरण

जैसे एक नाव है वह अजीव है, उसमें बैठे व्यक्ति जीव तत्त्व हैं। नाव में एक छेद है, उस छेद से पानी अन्दर नाव में आ रहा है, यह जो पानी आने का द्वार है यही आस्रव है, और पानी का नाव में एकत्रित होना बन्ध है, अब नाविक के द्वारा नाव डूब जाने के भय से पानी को रोकने के लिए छिद्र को बन्द कर देना संवर है, और फिर अन्दर भरा हुआ पानी धीरे-धीरे निकाला जा रहा है यही निर्जरा है, और जब सारा पानी निकाल दिया, तब नाव पूर्ण हल्की हो गयी है यही मोक्ष है।

शरीर भी एक नाव है, यह अजीव तत्त्व है, आत्मा जीव तत्त्व है, शुभ अशुभ कर्मों का आना आस्रव है, आये हुये कर्मों का आत्मा के साथ एकमेक होना बंध है, मन वचन काय की चंचलता को रोकना संवर है, तप के द्वारा कर्मों का आत्मा से एक देश छूट जाना निर्जरा है और कर्मों से आत्मा का पूर्ण रूप से अलग हो जाना यही मोक्ष है।

पदार्थ का लक्षण और भेद

जिसमें तत्त्व पाया जाता है, उसे पदार्थ कहते हैं। सात तत्त्वों में पुण्य तथा पाप मिलाकर नौ पदार्थ होते हैं। ..

पुण्य : जिससे प्राणी को इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पुण्य कहते हैं। जैसे–सुपुत्र

की प्राप्ति, व्यापार में लाभ और उच्च पद की प्राप्ति ये पुण्य के उदय से होते हैं।

धर्म पालन करना, पूजन करना, दान देना, शिक्षा प्रचार, परोपकार आदि पुण्य संचय के कारण हैं।

पाप : जिससे प्राणी को अनिष्ट वस्तु और दुःखदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पाप कहते हैं। जैसे पुत्र मर जाना, चोरी हो जाना, रोग हो जाना आदि पाप के उदय से होते हैं।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परिग्रह रखना, परनिन्दा करना, किसी का बुरा विचारना, जुआ खेलना आदि खराब कार्य पाप संचय के कारण हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. तत्त्व किसे कहते हैं ?
2. तत्त्वों के कितने भेद हैं ? नाम लिखो।
3. जीव और अजीव तत्त्व में क्या अन्तर है ?
4. आस्रव और संवर को उदाहरण सहित समझाइए।
5. निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है ?
6. पदार्थ कितने होते हैं ?

पाठ–8

उद्दायन राजा

वत्सदेश में शेखपुर नगर के राजा उद्दायन बहुत ही धर्मनिष्ठ थे। उनकी रानी का नाम प्रभावती था। एक समय सौधर्म इन्द्र ने अपनी सभा में सम्यक्त्व गुण की प्रशंसा करते हुए निर्विचिकित्सा अङ्ग में राजा उद्दायन की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

इस प्रशंसा को सुनकर सभी देव राजा उद्दायन से अत्यन्त प्रभावित हुए। तब एक देव उद्दायन राजा एवं उनकी रानी प्रभावती की परीक्षा लेने के लिए कुष्ठरोग से ग्रसित अत्यन्त दुर्गन्धित शरीर में, रत्नत्रय से पवित्र दिगम्बर मुनि मुद्रा का रूप धारण कर, आहारचर्या के लिए शेखपुर नगर में निकल पड़ा।

शरीर की दुर्गन्ध से नगर के समस्त श्रावक उन्हें देखते ही भाग गये, किन्तु उद्दायन राजा एवं रानी प्रभावती ने बड़ी भक्ति व विनय से मुनि का पड़गाहन किया और नवधाभक्ति पूर्वक आहारदान दिया। अधिक परीक्षा लेने के लिए उन्होंने आहार के बाद दुर्गन्धित वमन कर दिया। जिसकी बदबू से महल के सभी दासी दास भाग गये। किन्तु उद्दायन राजा और रानी प्रभावती, विनय से मुनिराज की सुश्रुषा करते हुए अपने ही आहार दान की निन्दा करने लगे। तभी अचानक वह मुनि वास्तविक देव पर्याय में प्रकट हो, राजा और रानी की प्रशंसा करने लगा। उसने उनका सम्मान किया और फिर अपने स्थान चला गया।

कालान्तर में राजा उद्दायन संसार तथा भोगों से विरक्त हो, कर्मों को नष्ट कर मोक्ष चले गये और रानी प्रभावती ने आगामी पर्याय में स्वर्ग प्राप्त किया।

इसलिए हमें कभी भी अपने देव, शास्त्र, गुरु के स्वरूप को देखकर ग्लानि नहीं करनी चाहिए बल्कि अटूट श्रद्धा के साथ अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. उद्दायन राजा किस देश के किस नगर पर राज्य करते थे ?
2. देव ने कैसा रूप बनाया ?
3. राजा उद्दायन एवं रानी प्रभावती आगे कहाँ उत्पन्न हुए ?
4. देव मुनि बनकर आहार चर्या के लिये किस नगर में आया था ?
5. किस अङ्ग में राजा उद्दायन की भूरि–भूरि प्रशंसा की जाती है ?

पाठ–9

भेद–विज्ञान

जिनवाणी अर्थात सच्चे दिगम्बर जैन शास्त्रों का अध्ययन करके और उनका बार–बार चिंतन करके ऐसा पक्का दृढ़ विश्वास बनाना कि–

1. जो जन्म–मरण आदि 18 दोषों से रहित होने से वीतरागी हैं, समस्त द्रव्यों की अनंत पर्यायों को जानने से सर्वज्ञ हैं, सच्चे आत्मकल्याण का उपदेश देने वाले होने से हितोपदेशी हैं, ऐसे तीन गुणों से सहित जो अरिहंत भगवान हैं वे ही सच्चे देव हैं, इनके अलावा अन्य कोई सच्चा देव नहीं है।
2. दिगम्बर जैन वीतरागी साधुओं द्वारा लिखे गये शास्त्र ही सच्चे शास्त्र हैं इनके अलावा अन्य शास्त्र सच्चे शास्त्र नहीं हैं।
3. पंचेन्द्रियों के विषयों से दूर रहने वाले, समस्त हिंसाजनित कार्यों से रहित, समस्त परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन रहने वाले ऐसे रागद्वेष से रहित दिगम्बर जैन निर्ग्रंथ मुनि ही सच्चे गुरु हैं, अन्य गुरु सच्चे गुरु नहीं हैं।
4. आस्रव और बंध का सच्चा स्वरूप जानकर ये तो हेय हैं, तथा संवर और निर्जरा का स्वरूप जानकर, ये उपादेय हैं तथा कर्म से रहित आत्मा का जो स्वरूप है वही मेरी आत्मा का सच्चा स्वरूप है।
5. मेरी जो ये मनुष्य पर्याय है, इसमें आत्मा और शरीर दो द्रव्य मिले हुये हैं। जो दिखाई पड़ता है, वह तो शरीर है और इसमें जो शक्ति रूप से जानने–देखने रूप कार्य को करने वाला है, वह आत्मा है। जब आत्मा शरीर से पृथक् हो जाता है तो मात्र शरीर रह जाता है, जिसे हम मृत शरीर कहते हैं।
6. आत्मा की दो पर्याय होती हैं–शुद्ध पर्याय अर्थात् मुक्त या सिद्ध पर्याय तथा अशुद्ध पर्याय अर्थात् संसारी जीव की पर्याय।
7. मेरी वर्तमान मनुष्य पर्याय अशुद्ध पर्याय है। मेरी आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म लगे होने से अशुद्ध है आत्मा के साथ जो पुद्‌गल कर्म चिपके हुये हैं, वे तो द्रव्यकर्म हैं। आत्मा में जो राग–द्वेष–क्रोध आदि विकार परिणाम होते हैं, वे भावकर्म हैं और शरीर आदि नोकर्म हैं। मैं आत्मा स्वभाव से तो सिद्ध भगवान् जैसा अनन्त ज्ञान–दर्शन शक्ति वाला द्रव्य हूँ लेकिन वर्तमान संसारी पर्याय में उपरोक्त तीन कर्मों से सहित होता हुआ, संसार में भटक रहा हूँ।
8. यद्यपि मैं जानने–देखने अर्थात् चेतना वाला जीव द्रव्य हूँ फिर भी अज्ञानवश अपने स्वरूप को न पहचान कर जिस–जिस शरीर को प्राप्त करता हूँ उसी को अपना स्वरूप मान लेता हूँ, यह मेरी महान् भूल है और इसी से मैं संसार में भटक रहा हूँ।
9. कर्म के फलस्वरूप मुझे सुख–दुःख रूप जो भी अच्छी या बुरी वस्तुओं का संयोग प्राप्त होता है, मैं उन रूप होकर अपने को सुखी–दुःखी मानने लगता हूँ, जबकि मेरा स्वभाव तो अनंत सुख वाला है और इसी भूल के कारण मैं भटक रहा हूँ।
10. मैंने अपने को दूसरे का सुख–दुःख देने वाला मान रखा है। दूसरे को सुख–दुःख वास्तव में उसके अपने कर्मों के उदयानुसार होता है, परन्तु मैं अपने अज्ञान से अपने को अन्य के सुख–दुःख का कर्ता मानता हूँ। यह मेरी महान्

भूल है और इसी भूल के कारण संसार में भटक रहा हूँ।

11. संसार का कोई भी पदार्थ अच्छा या बुरा नहीं है। मैं अपनी कषायों के अनुसार उनमें अच्छे बुरे की कल्पना कर लेता हूँ। मुझे वस्तु के स्वरूप को जानकर ऐसी भूल नहीं करना चाहिए। यही भूल मेरे संसार भ्रमण का कारण है।

12. उपरोक्त सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान करता हुआ, सात तत्त्व का श्रद्धान करता हुआ, अज्ञान बुद्धि समझता हुआ, मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि इस शरीर में मौजूद अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति तथा सुख स्वभाव वाला ऐसा मैं आत्मा हूँ। द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा शरीरादि नोकर्म न तो मेरे हैं, न मेरे थे और न मेरे होंगे। मैं भी इनका नहीं हूँ, कभी इनका नहीं था और कभी इनका नहीं होऊँगा। ये सब मुझसे सर्वथा भिन्न हैं, और मैं चैतन्य आत्मा इन सबसे भिन्न हूँ। अब मैं इन सबको अपने से भिन्न मानता हुआ अपने शुद्ध स्वभाव का निर्णय करता हूँ।

उपरोक्त प्रकार से अपने स्वरूप का और अपने से भिन्न समस्त अन्य द्रव्यों के स्वभाव का निर्णय करते हुये अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान व निर्णय करना भेदविज्ञान है।

अभ्यास प्रश्न

1. भेदविज्ञान किसे कहते हैं ?
2. संसार भ्रमण की कोई दो भूलें लिखिए।
3. आस्रव और बंध को जानकर क्या करना चाहिए ?

पाठ–10

पंचकल्याणक

कल्याणक का लक्षण

तीर्थंकरों के निमित्त से देवों के द्वारा मनाया जाने वाला उत्सव कल्याणक कहलाता है। अथवा देवों और मनुष्यों के द्वारा तीर्थंकर के जीवन की विशेष घटना को उत्सव के रूप में मनाना कल्याणक कहलाता है।

कल्याणक के नाम

गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक, मोक्ष कल्याणक। इस प्रकार कल्याणक पाँच होते हैं।

(1) **गर्भकल्याणक**–सौधर्म इन्द्र अपने दिव्य अवधिज्ञान से भगवान् के गर्भावतरण को निकट जानकर कुबेर को तीर्थंकर की जन्मनगरी में दिन में चार बार रत्नों की वर्षा करने की आज्ञा देता है। इस प्रकार रत्नों की वर्षा गर्भ में आने से 6 माह पूर्व से जन्म होने तक, 15 माह तक, निरन्तर होती रहती है।

छह माह के उपरान्त तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आने को होते हैं तब माता रात्रि के अन्तिम पहर में अत्यन्त सुहावने, मनभावन, आह्लादकारी सोलह स्वप्नों को देखती हैं, ये स्वप्न तीर्थंकर के गर्भावतरण के सूचक होते हैं।

उसी समय सौधर्म इन्द्र भगवान् के गर्भावतरण को जानकर श्री आदि देवकुमारियों को जिनमाता के गर्भशोधन करने की आज्ञा प्रदान करता है। तीर्थंकर के गर्भावतरण होते ही समस्त देव उस नगर की परिक्रमा कर माता–पिता को नमस्कार करते हैं। गर्भ स्थित शिशु की स्तुति कर महान् उत्सव मनाते हैं। इसी उत्सव को गर्भकल्याणक कहते हैं।

(2) **जन्मकल्याणक**–गर्भावधि पूर्ण होते ही जिन माता, ग्रहों की उच्च बलवान् स्थिति में, तीर्थंकर पुत्र को जन्म देती हैं। जिस समय तीर्थंकर बालक का जन्म होता है, उस समय तीनों लोकों में आनन्द और सुख का प्रसार होता है। प्रभु बालक के जन्म के माहात्म्य से नारकी जीवों को भी क्षणभर अपूर्वसुख की प्राप्ति होती है।

जन्म के कुछ क्षण बाद ही स्वर्ग में इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है, उसी समय समस्त देव जन्म सूचना को अपने अवधिज्ञान से जान लेते हैं और शीघ्र ही सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी के साथ ऐरावत हाथी पर सवार होकर जन्म नगरी को आता है और सर्वप्रथम नगरी की तीन परिक्रमा देता है। तदनन्तर शची (इन्द्राणी) प्रसूती गृह में प्रच्छन्न रूप से पहुँचकर जिन माता की प्रदक्षिणा देकर, जिन माता को मायामयी निद्रा में निद्रित कर, अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ जिन बालक की छवि को निहारती हुई, तीर्थंकर बालक को लाकर सौधर्म इन्द्र को सौंप देती है। तब इन्द्र बालक का दर्शन पाकर भाव विभोर हो जाता है। तत्पश्चात् ऐरावत हाथी पर आरूढ होकर सुमेरु पर्वत पर जाकर दिव्यसिंहासन पर बालक को बिठाकर अन्य इन्द्रों तथा देवों सहित उत्सव–उल्लास के साथ क्षीरसागर के जल से अभिषेक करता है। तदनन्तर इन्द्राणी बालक को वस्त्राभूषणों से सुशोभित करती है। फिर इन्द्र बालक के दाहिने पैर के अंगूठे पर सर्वप्रथम जो चिह्न देखता है उसे चिह्न के रूप में घोषित कर भगवान् का नामकरण करता है। तत्पश्चात् इन्द्र व देव आदि जन्मनगरी आकर तीर्थंकर माता–पिता का विशेष सत्कार कर महान् उत्सव करते हैं। इसी उत्सव को जन्म कल्याणक कहते हैं।

(3)**तपकल्याणक**–तीर्थंकर के मन में वैराग्य उत्पन्न होते ही लौकान्तिक देव आकर उनके वैराग्य की सराहना करते हुए स्तुति करते हैं । तत्पश्चात् तीर्थंकर पालकी में आरूढ़ होते हैं, जिसे देव, मनुष्य, विद्याधर आदि सात–सात

कदम अपने कंधे पर रखकर दीक्षावन तक ले जाते हैं। वहाँ चन्द्रकान्तमणि की शिला पर विराजमान हो, पद्मासन मुद्रा में पूर्वाभिमुख होकर सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करके पंचमुष्ठी केशलुंचन करते हुए तीर्थंकर जिनमुद्रा को धारण करते हैं। सौधर्म इन्द्र केशों को क्षीरसागर में विसर्जित करता है। इस प्रकार दीक्षोपरान्त तीर्थंकर की पूजाभक्ति कर देवगण स्वस्थान लौट जाते हैं। इसी को तपकल्याणक कहा जाता है।

(4) ज्ञानकल्याणक–अपनी कठोर तपस्या के द्वारा घातिया कर्मों के नष्ट होने से तीर्थंकर को केवलज्ञान प्राप्त होता है। जिसके प्रभाव से सब कुछ निष्प्रयास दर्पणवत् उनके ज्ञान में झलकने लगता है। इसी बीच सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवशरण की अद्भुत रचना करता है। जिसमें विराजमान तीर्थंकर की समस्त देव भक्तिभाव पूर्वक अर्चना कर केवलज्ञान महोत्सव मनाते हैं। इसी को ज्ञानकल्याणक कहते हैं।

(5) मोक्षकल्याणक–सम्पूर्ण कर्मों के नष्ट होने के बाद तीर्थंकर को निर्वाण पद की प्राप्ति होती है। तब देवगण मोक्षस्थली पर आकर अग्नि संस्कार करते हैं। तदनन्तर उस भस्म को मस्तक पर लगाकर उन जैसा बनने की भावना भाते हैं। फिर समस्त इन्द्र मिलकर आनन्द नाटक करते हैं। इस प्रकार सभी देव विधिपूर्वक निर्वाण की पूजा कर अपने–अपने स्थान लौट जाते हैं। इसी को मोक्षकल्याणक कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. कल्याणक किसे कहते हैं ?
2. कल्याणक कितने प्रकार के होते हैं ?
3. तपकल्याणक–जन्मकल्याणक से आप क्या समझते हैं ?
4. सौधर्म इन्द्र रत्नों का वर्षा कब और कितनी बार करता हैं ?
5 तीर्थंकर का अभिषेक किस पर्वत पर किससे होता है ?

पाठ–11

समवशरण

तीर्थंकर भगवान् की उपदेश सभा को समवशरण कहते हैं। इसमें प्रत्येक प्राणी को समानतापूर्वक शरण मिलती है इसलिए समवशरण यह इसकी सार्थक संज्ञा है। जहाँ बैठ कर तिर्यंच, मनुष्य और देव भगवान् की अमृत वाणी से कर्ण तृप्त करते हैं। उस सभा को समवशरण कहते हैं।

समवशरण की संरचना–तीर्थंकर के केवलज्ञान होने के तुरन्त बाद, सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवशरण की रचना करते हैं। यह पृथ्वी से पाँच हजार धनुष की ऊँचाई पर वृत्ताकार रूप में होता है। इसकी चारों दिशाओं में 20-20 हजार सीढ़ियाँ होती हैं। प्रत्येक दिशा में सीढ़ियों से लगी एक-एक वीथि/सडक बनी होती है, जो समवशरण के केन्द्र में स्थित गन्धकटी के प्रथमपीठ तक जाती है।

समवशरण में अत्यन्त आकर्षक और अनुपम शोभा सहित चैत्यप्रासाद भूमि, जलखातिका भूमि, लतावनभूमि, उपवनभूमि, ध्वजभूमि, कल्पवृक्षभूमि, भवनभूमि, श्रीमण्डपभूमि, प्रथमपीठ, द्वितीयपीठ, तृतीयपीठ भूमि इस प्रकार कुल ग्यारह भूमियाँ होती हैं।

द्वादशसभा–श्रीमण्डप भूमि में स्फटिक मणिमय दीवारों से विभाजित बारह कोठे होते हैं। जिनमें 12 सभायें होती हैं। पूर्व दिशा को आदि करके बारह सभाओं में क्रमशः गणधरमुनि, कल्पवासिनी देवी, आर्यिका और श्राविका, ज्योतिषी देवी, व्यन्तरदेवी, भवनवासिनी देवी, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिष देव, कल्पवासी देव, चक्रवर्ती आदि मनुष्य तथा सिंहादि तिर्यञ्च प्राणी अपने जन्मजात बैर आदि को छोड़कर उपशान्त भाव से बैठकर भगवान् के उपदेशामृत का लाभ लेते हैं।

मानस्तम्भ–समवशरण की आठवीं भूमि के प्रवेश द्वार पर चारों दिशाओं में एक-एक मानस्तम्भ होता है, जिसके देखने मात्र से मानयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव का अभिमान गलित हो जाता है। अत्यन्त भावुक और श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टम भूमि में प्रवेश कर साक्षात् भगवान् के दर्शनों से तथा उनकी अमृतवाणी से नेत्र, कर्ण व जीवन सफल करते हैं।

दिव्यध्वनि–समवशरण में भगवान् की दिव्यध्वनि चौबीस घण्टे में चार बार, छह-छह घडी सुबह, दोपहर, शाम तथा अर्द्धरात्रि में खिरती है। किसी विशिष्टपुण्यात्मा जीव के पुण्य से असमय में भी खिरती है।

समवशरण का माहात्म्य–समवशरण में जिनेन्द्र देव के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, बैर, काम, बाधा एवं क्षुधा-तृषा आदि की पीड़ायें कदापि नहीं होती। साथ ही श्रीमण्डप भूमि के थोड़े से ही क्षेत्र में असंख्यात जीव एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हुए सुखपूर्वक विराजते हैं। योजनों विस्तार वाले इस समवशरण में प्रवेश और निकलने में बाल-वृद्ध सभी को अन्तर्मुहूर्त से अधिक समय नहीं लगता है।

अभ्यास प्रश्न

1. समवशरण किसे कहते हैं ?
2. समवशरण की रचना किस प्रकार से होती है ?
3. समवशरण में कितनी भूमियाँ होती हैं ?
4. समवशरण की बारह सभाओं में कौन कहाँ बैठता है ?
5. मानस्तम्भ की अपनी क्या विशेषता होती है ?

पाठ-12

जैन महापुरुष

महापुरुष :- जो पुरुष वासनाओं, विकारों, कषायों आदि के दास न बनकर आत्मावलंबी हो अपने रत्नत्रय धर्म को उज्जवल बनाते हुए, आत्मविकास के क्षेत्र में वर्धमान होते हैं, उन मनस्वी व्यक्तियों को महापुरुष कहते हैं।

नाम :- 24 कुलकर, 24 तीर्थंकर, 24-24 तीर्थंकर के माता-पिता, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव (नारायण), 9 प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण), 9 नारद, 11 रुद्र और 24 कामदेव। ये सब मिलाकर 169 महापुरुष होते हैं।

इनमें से तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव (नारायण) तथा प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) मिलकर 63 शलाका पुरुष कहलाते हैं।

1. कुलकर :- वे कुशल मनीषी, जो कर्मभूमि के प्रारम्भ में होते हैं, मानव समूह को कुल के आधार पर व्यवस्थित कर मानव सभ्यता के सूत्रधार बनते हैं, वे कुलकर कहलाते हैं। ये मानव समाज को जीने की कला सिखाते हैं, विवेक-विचार की शिक्षा देते हैं। जैन परम्परा में कुलकरों का वही सम्मान है, जो वैदिक परम्परा में मनुओं का है।

2. तीर्थंकर :- जो धर्म परम्परा में आयी मलिनता और विकृतियों का नाश कर धर्म के मूल स्वरूप को पुनः स्थापित करते हैं, ऐसे ही जगत उद्धारक तीर्थंकर कहलाते हैं।

ये समस्त विकारों पर विजय पाकर केवलज्ञान को प्राप्त कर निर्वाण के अधिकारी बनते हैं और मानव जाति को दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्ष का मार्ग बताकर उस पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

3. चक्रवर्ती :- जो छह खण्ड के अधिपति होते हैं, जिनका समस्त भूमंडल पर एक छत्र राज्य होता है, पृथ्वी तल के समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठवैभव और भोग के स्वामी होने के कारण इन्हें नरेन्द्र भी कहते हैं।

चक्रवर्ती के पास वैभव अतुलनीय होता है। वह चौदह रत्नों के, 9 निधियों के, 7 प्रकार की सेना के, पृथक् विक्रिया के तथा 32000 हजार मुकुटबद्ध राजाओं के स्वामी होते हैं। इनकी पटरानी सहित 96000 रानियाँ होती हैं और 3 करोड़ 50 हजार परिवारिकजन होते हैं।

4. बलदेव :- ये नारायण के भ्राता होते हैं और उनसे प्रगाढ़ स्नेह रखते हैं, ये अतुल पराक्रम के धनी, अतिशय रूपवान और यशस्वी होते हैं। इनकी 8हजार रानियाँ होती हैं। तथा ये पाँच रत्नों के स्वामी होते हैं।

5-6. वासुदेव (नारायण) -प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण):- ये दोनों समकालीन होते हैं। पूर्वभव में निदान सहित तपश्चरण कर स्वर्ग में देव होते हैं और वहाँ से च्युत होकर वासुदेव-प्रतिवासुदेव बनते हैं। दोनों अर्धचक्रवर्ती होते हैं। इनकी सोलह-सोलह हजार रानियाँ होती हैं। प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव) प्रायः विद्याधर होते हैं और नारायण (वासुदेव) भूमिगोचरी। इनका आपस में जन्मजात बैर होता है। इनमें किसी निमित्त से युद्ध होता है, जिसमें नारायण के द्वारा प्रतिनारायण मारा जाता है। ये दोनों निकट भव्य होते हैं, परन्तु अनुबद्ध बैर के कारण नरक में जाते हैं।

7. नारद :– ये नारायण–प्रतिनारायण के काल में होते हैं, ये अत्यन्त कौतूहली और कलहप्रिय होते हैं। नारायण और प्रतिनारायण को आपस में लड़ाने में इनकी प्रमुख भूमिका रहती है। ये ब्रह्मचारी होते हैं और इन्हें राजर्षि का सम्मान प्राप्त होता है। ये सारे राजभवन में बेरोकटोक आते जाते रहते हैं, ये निकट भव्य होते हैं परन्तु कलहप्रियता के कारण नरक में जाते हैं।

8. रुद्र:– ये सभी अधर्मपूर्ण व्यापार में संलग्न होकर रौद्रकर्म किया करते हैं, इसलिये रुद्र कहलाते हैं। ये कुमारावस्था में जिनदीक्षा धारणकर कठोर तपस्या करते हैं। जिसके फलस्वरुप इन्हें अंगों का ज्ञान हो जाता है, किन्तु दशवें विद्यानुवाद पूर्व का अध्ययन करते समय विषयों के आधीन होकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। संयम और सम्यक्त्व से पतित होने के कारण सभी रुद्र नरकगामी ही होते हैं। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार रुद्रों एवं नारदों की उत्पत्ति हुण्डावसर्पिणी काल में ही होती है।

9. कामदेव :– प्रत्येक कालचक्र के दुषमासुषमा काल में चौबीस कामदेव होते हैं। ये सभी अद्वितीय रूप और लावण्य के धनी होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. महापुरुष किसे कहते हैं एवं कितने प्रकार के होते हैं ?
2. त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम बताइए।
3. चक्रवर्ती और कुलकर के विषय में संक्षेप में बताइए।
4. नारद, नारायण और रुद्र किन कारणों से नरक में जाते हैं ?
5. महापुरुषों में कौन नरक, स्वर्ग व मोक्ष जाता है ?

पाठ-13

श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी

चम्पापुर के राजा का नाम अरिदमन और रानी का नाम कुन्दप्रभा था। रानी कुन्दप्रभा, कुन्दपुष्प के समान लावण्यमयी, गुण और शील में अद्वितीय थी। रानी कुन्दप्रभा के गर्भ से अत्यन्त धीर-वीर, उदारवेत्ता, दानपरायण, दीनवत्सल, धर्मप्रिय पुत्र रत्न हुआ। जब वह पुत्र एक महीने का हो गया तब एक दिन उसके माता-पिता अत्यन्त उत्साह एवं समारोह के साथ उसे जिनमन्दिर ले गये और देवपूजन की। गुरु उपदेश के पश्चात् निमित्तज्ञानी गुरु के अनुसार उस बालक का नाम श्रीपाल रख दिया। 8 वर्ष के बाद श्रीपाल का मौलि-बन्धन एवं उपनयन संस्कार कर दिया गया अर्थात् यज्ञोपवीत पहनाकर उसे पंचाणुव्रत बतला दिये गये तथा श्रावक के अष्टमूलगुण धारण करा दिये गये, सप्त व्यसनों का भी परित्याग करा दिया गया तथा जब तक पूर्णरूप से विद्याध्ययन न हो जाय, तब तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना भी समझा दिया गया। निर्दिष्ट मंत्रों के द्वारा जैनविधि के अनुसार हवन-पूजन इत्यादि कराके श्रीपाल पढने चले गये। वहाँ श्रीपाल छन्द, व्याकरण, गणित, सामुद्रिक, रसायन, संगीत, ज्योतिष, धनुर्विद्या, शास्त्रविद्या, जल में तैरना, आयुर्वेद, वाहन संचालन, नृत्य आदि विद्या एवं कलाओं में निपुण हो गये और आगम-अध्यात्म विद्याओं का अध्ययन पूर्ण करने के बाद पुनः चम्पापुर अपने घर वापस आ गये। पिता ने श्रीपाल का अतुल विद्वता, पराक्रम,अद्वितीय न्याय-परायणता एवं सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न होने के कारण राज्यतिलक कर दिया। राज्य संचालन में दत्तचित्त, कामदेव के समान श्रीपाल को एवं अन्य 700 वीरों को अचानक एक साथ महाभयानक कुष्ठ रोग हो गया, जिससे इन लोगों का शरीर गलने लगा एवं खून बहने लगा। इन लोगों की दयनीय दशा को देखकर प्रजाजन अत्यन्त क्षुब्ध एवं दुःखी रहते थे। जब रोग की दुर्गन्ध के कारण वातावरण बिगड़ने लगा, तब वीरदमन चाचा जी के कहने पर श्रीपाल 700 वीरों के साथ नगर से बहुत दूर उद्यान में जाकर निवास करने लगे।

मालवा देश में एक उज्जयनी नामक ऐश्वर्यपूर्ण नगरी थी। जिसके राजा का नाम पुहुपाल था। उसकी अनेक रानियाँ थीं। उनमें से पद्मरानी के गर्भ से सुरसुन्दरी एवं मैनासुन्दरी नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। उनमें से सुरसुन्दरी रूपवती के साथ-साथ सांसारिक विषय भोगों में आसक्त रहती थी। परन्तु मैनासुन्दरी उत्तम रूपवती, उत्तम गुणवती एवं विवेकशील थी। सुरसुन्दरी ने शैव गुरु से एवं मैनासुन्दरी ने आर्यिका से धार्मिक अध्ययन किया था। पिता के पूछने पर सुरसुन्दरी ने अपनी स्वेच्छानुसार हरिवाहन से विवाह स्वीकार कर लिया, परन्तु मैनासुन्दरी ने कहा है कि पिता जी, कुलीन एवं शीलवती कन्यायें अपने मुख से किसी अभीष्टवर की याचना कदापि नहीं करती हैं। मैनासुन्दरी की विद्वत्तापूर्ण वार्ता को सुनकर राजा पुहुपाल तिलमिला गये और उन्होंने क्रोध में आकर कोढ़ी राजा श्रीपाल से विवाह कर दिया। विवाह मण्डप में पति की निन्दा सुनकर मैनासुन्दरी बोली कि आप मेरे हितचिन्तक हैं, आप मेरे पति को महाकुरूप एवं रोग ग्रस्त देख रहे हैं, परन्तु मेरी दृष्टिमें तो वे कामदेव के समान सुन्दर हैं। आप लोगों को इस अप्रिय प्रसंग की चर्चा समाप्त कर देनी चाहिए। इसमें पिताजी का कोई दोष नहीं है। बाद में राजा पुहुपाल को अपनी गलती पर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने मैनासुंदरी से क्षमायाचना की।

राजा श्रीपाल के कुष्ठरोग को दूर करने के लिये मैनासुंदरी ने गुरु के आशीर्वाद एवं विधि के अनुसार अष्टाह्निका पर्व में सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया, जिसके प्रभाव से श्रीपाल के साथ 700 वीरों का भी कुष्ठरोग ठीक हो गया। कुछ समय बाद श्रीपाल मैनासुन्दरी के साथ चम्पापुरी वापस आ गये।

एक दिन श्रीपाल अपने महल के छत पर बैठे हुये थे। आकाश में बिजली चमकी, जिसे देखकर उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने पुत्र धनपाल को राज्य सौंपकर वन की ओर चले गये। उनके साथ 8000 रानियाँ तथा माता कुन्दप्रभा भी वन को प्रस्थान कर गई।

श्रीपाल ने मुनीश्वर के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। उनके साथ 700 वीरों ने भी दीक्षा ले ली, माता कुन्दप्रभा व अन्य रानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किये। कठोर तपस्या करते हुए अल्पसमय में ही घातिया कर्मों को नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर शेषकर्मों को नष्टकर मोक्षधाम को प्राप्त हुए।

इसी प्रकार मैनासुन्दरी तथा माता कुन्दप्रभा ने भी आर्यिका व्रत ग्रहण कर घोर तपश्चरण किया और तप के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेद कर सोलहवें स्वर्ग में देव पद को प्राप्त किया। इसी तरह रयणमंजूषा, गुणमाला आदि अन्य रानियों ने भी अपनी-अपनी तपस्या के अनुसार स्वर्गादि शुभ गति को प्राप्त किया।

अभ्यास प्रश्न

1. श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के माता-पिता का नाम बताइए।
2. श्रीपाल की कुल कितनी रानियाँ थीं ?
3. श्रीपाल कितनी कलाओं में निपुण थे ?
4. श्रीपाल को कितने वीरों के साथ कुष्ठ रोग हुआ था ?
5. कुष्ठरोग से श्रीपाल के शरीर में क्या प्रतिक्रिया हुई ?
6. श्रीपाल एवं अन्य वीरों का कुष्ठरोग कैसे शान्त हुआ ?
7. श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के जीवन परिचय से क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ-14

अष्टाह्निका पर्व

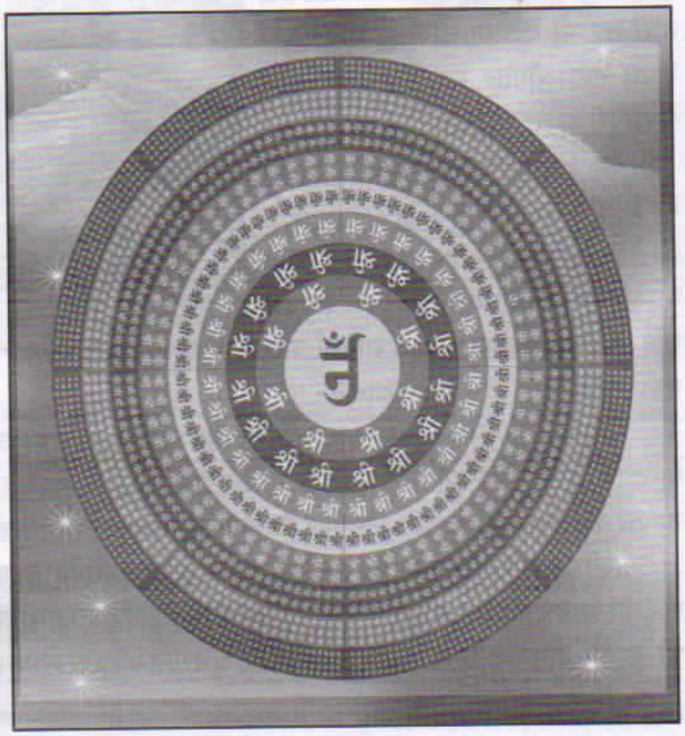

प्रतिवर्ष कार्तिक-फाल्गुन-आषाढ़ इन तीनो मासों की शुक्ला अष्मी तिथि से पूर्णिमा-तिथी तक यह पर्व बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। हम जहाँ रहते हैं वह जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तार वाला है। इसको घेरते हुए लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर द्वीप, पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, इक्षुवरद्वीप, इक्षुवरसमुद्र है। जिनका विस्तार क्रमशः दूना दूना है। इनके पश्चात् आठवां द्वीप नन्दीश्वर द्वीप है। इसके आगे भी स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्र एक दूसरे को घेरते हुए हैं।

नन्दीश्वर द्वीप नामक आठवें द्वीप का विस्तार 163 करोड़ 84 लाख योजन है। नन्दीश्वर द्वीप की चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि है। ये पर्वत 84 हजार योजन विस्तार वाले हैं। इस द्वीप की पूर्व दिशा में राया, सुनन्दा, सुरम्या, सुसेना नामक चार वापिकायें हैं। दक्षिण में सुभाला, विधुन्माला, सुषेणा, चन्द्रसेना नाम की एवं पश्चिम दिशा में श्रीदत्ता, श्रीसेना, श्रीकान्ता व श्रीराम नामक 4 वापिकायें तथा उत्तरदिशा में कार्माङ्गा, कामबाणा, सुप्रभा, सर्वतोभद्रा नामक 4 वापिकायें हैं। ये 16 वापिका अंजनगिरि को घेरे हुये तथा एक लाख योजन विस्तार वाली हैं। प्रत्येक वापिका में दस हजार योजन विस्तार वाला दधिमुख पर्वत है। इस प्रकार 16 वापिका सम्बन्धी 16 दधिमुख पर्वत हैं। प्रत्येक वापिका के बाहर के दो कोने में दो-दो रतिकर पर्वत हैं। इस प्रकार कुल 32 रतिकर पर्वत हैं। इनका विस्तार एक हजार योजन है। 16 + 4 +32, इस प्रकार कुल 52 पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत के शिखर पर एक-एक अकृत्रिम जिनमन्दिर है और प्रत्येक जिनमन्दिर में 108 रत्नमयी जिनबिम्ब हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 52 जिनमन्दिरों में कुल 5616 जिनबिम्ब हैं। प्रत्येक जिनबिम्ब पद्मासन में 500 धनुष की अवगाहना वाले हैं। इनकी प्रभा करोड़ों सूर्य के तेज और कान्ति को लज्जित करती है। प्राकृतिक रूप से प्रतिमाओं के मुख एवं नख लाल तथा केशों की पंक्ति एवं नेत्र श्याम वर्ण के हैं। प्रतिमाओं के दर्शन का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि सम्यक्त्व की प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

अधिकांश रूप से चारों निकायों के इन्द्र एवं सम्यग्दृष्टि देव ही नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं और वहाँ आठ दिन रहकर भक्तिभाव पूर्वक अष्टाह्निका पर्व मनाकर सातिशय पुण्य का संचय करते हैं। कदाचित् मिथ्यादृष्टिदेव भी इनके साथ चला जाये तो वह भी सम्यक्त्व ग्रहण कर सकता है। इस पर्व का सम्बन्ध ज्ञानी सम्यग्दृष्टिदेवों से है। क्योंकि मनुष्य की गमन शक्ति तो 45 लाख योजन प्रमाण ढाईद्वीप तक ही है। ढाई द्वीप तक विद्याधर या चारणऋद्धि धारी मुनीश्वर ही जा सकते हैं, सामान्य मनुष्य नहीं। गृहस्थाश्रम में रहते हुए तीर्थंकर भी नहीं जा सकते हैं।

मनुष्य अपनी शक्ति की लघुता को ध्यान में रखकर यहाँ पर ही जिनमन्दिर में नन्दीश्वरद्वीप और जिनबिम्ब की कल्पना कर पूजन किया करते हैं। इन दिनों लोग प्राय: नन्दीश्वरद्वीप मण्डल विधान करते हैं। कुछ समय से सिद्धचक्र मण्डल विधान भी इस समय करने का प्रचलन प्रारम्भ हो गया है।

इस पर्व के दिनों में विशेष रूप से व्रत, नियम, संयम का पालन करना चाहिए तथा अपनी शक्ति के अनुसार एकासन, उपवास करते हुए आत्मा का चिन्तन करना चाहिए। यह पर्व दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में विशेष महत्त्व रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1. अष्टाह्निका पर्व का सम्बन्ध किस द्वीप से है?
2. नन्दीश्वरद्वीप का विस्तार कितना है?
3. नन्दीश्वरद्वीप में कितनी वापिकायें हैं ? नाम बताइए।
4. नन्दीश्वरद्वीप में कुल कितने जिनमन्दिर व जिनबिम्ब हैं ?
5. नन्दीश्वरद्वीप में जिनबिम्बों के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कीजिए।
6. नन्दीश्वरद्वीप कौन-कौन जा सकते हैं?
7. नन्दीश्वरद्वीप में हम क्यों नहीं जा सकते हैं?
8. अष्टाह्निका पर्व में कौन-सा विधान करना चाहिए?

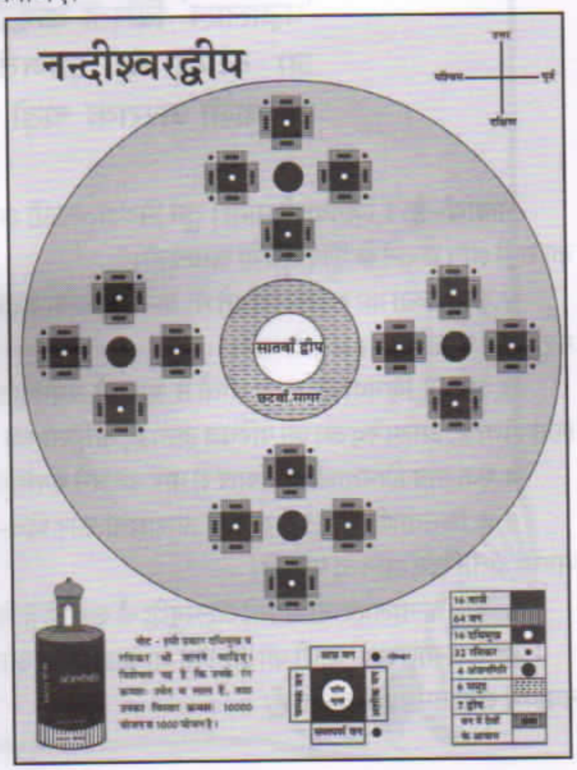

पाठ–15

जिनवाणी स्तुति

मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है।।१।।
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को।
स्वपर पिछानवे को, परम प्रमानी है।।२।।
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।।३।।
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है।।४।।
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपूँ दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन।।५।।
जिनवाणी की यह थुति, अल्पबुद्धि परमान।
'पन्नालाल' विनती करै, दे माता मोहि ज्ञान।।६।।
जा वाणी के ज्ञानतें, सूझे लोकालोक।
सो वानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोक।।७।।

भावार्थ–हे 1.जिनवाणी माता! तुम मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश करने के लिए तथा आत्मा और पर पदार्थों का सही ज्ञान कराने के लिए सूर्य के समान हो।

2.छहों द्रव्यों का स्वरूप जानने में, कर्मों की बन्ध पद्धति का ज्ञान कराने में, निज और पर की सच्ची पहचान कराने में तुम्हारी प्रमाणिकता असंदिग्ध है।

3.अतः हे जिनवाणी, भव्य जीवों ने आपको अपने हृदय में धारण कर रखा है क्योंकि आपके द्वारा आत्मानुभव का ज्ञान होता है, आत्म स्वरूप का परिचय होता है, अहिंसा रूप धर्म का ज्ञान होता है।

4.एक मात्र जिनवाणी ही संसार से पार उतारने में समर्थ है एवं सच्चे सुख का रास्ता बताने वाली है।

5.हे जिनवाणी माता! मैं तेरी ही आराधना सारे दिन–रात करता हूँ क्योंकि जो व्यक्ति तेरी शरण में जाता है वही सच्चा अतीन्द्रिय आनन्द पाता है।

6.कवि पन्नालाल जी अपनी अल्पबुद्धि से कह रहे है कि हे जिनवाणी माता मुझे ज्ञान दो स्तुति करने के लिए।

7.जिस वीतराग–वाणी का ज्ञान हो जाने पर लोक ओर अलोक का सही ज्ञान हो जाता है उस वाणी को मैं मस्तक नवाकर सदा नमस्कार करता हूँ।

खण्ड - ब

पाठ-1

1. प्रार्थना

हे प्रभु ज्ञान का दान दो, हम सभी की यही वंदना।
दूर दुर्गुण सभी तुम करो, हम सभी की यही प्रार्थना।।टेक।।

धर्म रक्षा में हम प्राण दें, न अधर्मी कभी हम बनें।
झूठे वैभव को हम त्याग कर, सर्वथा सत्य राही बनें ।।
न कभी हमको अभिमान हो, बस यही एक आराधना।
हे प्रभु ज्ञान का दान दो, हम सभी की यही वंदना।।१।।

सदाचारी रहें हम सदा, और सदाचार हो सम्पदा।
न रहे मन में ईर्ष्या कभी, प्रीत की ही बहे नर्मदा।।
छल कपट से रहें दूर हम, मिलके करते यही कामना।
हे प्रभु ज्ञान का दान दो, हम सभी की यही वंदना।।२।।

लाखों बाधायें आयें तो क्या, लोभ भरमाये हमको तो क्या।
जिसे मिल जाये तेरी शरण, धैर्य छूटेगा उसका कहाँ।।
हम भक्तों को तुमसे प्रभो, यही वरदान तो मांगना।
हे प्रभु ज्ञान का दान दो, हम सभी की यही वंदना।।३।।

पाठ-2

तीर्थंकर शान्तिनाथ

एक समय हस्तिनापुर नगरी में काश्यपगोत्री महाराज विश्वसेन राज्य करते थे। गान्धार नरेश के राजा अजितंजय की पुत्री ऐरा देवी इनकी महारानी थी। एक बार भाद्रपद कृष्णा सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में रात्रि के चतुर्थ भाग में उन्होंने साक्षात् पुत्ररूप फल देने वाले स्वप्न देखे। प्रातः राजा विश्वसेन ने उन्हें उन स्वप्नों का फल सुनाया। नव महीने बाद ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन याम्ययोग में प्रात:काल के समय बालक शान्तिकुमार का जन्म हुआ। चारों निकायों के देवों ने मिलकर तीर्थंकर बालक का जन्मोत्सव मनाया। तीर्थंकर शान्तिनाथ की आयु एक लाख वर्ष की थी। इनका शरीर चालीस धनुष ऊँचा एवं स्वर्ण के समान वर्ण का था। ये जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी थे।

जब इनके कुमार काल के पच्चीस हजार वर्ष बीत गये, तब महाराज विश्वसेन ने इन्हें अपना सम्पूर्ण राज्य सौंप दिया। पच्चीस हजार वर्ष अखण्ड राज्य भोगने के बाद चक्रवर्ती के लक्षण स्वरूप चक्र आदि चौदह रत्न एवं नव निधियों के स्वामी हुये। इस प्रकार आप तीर्थंकर, चक्रवती तथा कामदेव तीनों पद के धारी थे।

एक दिन दर्पण में मुख देखने से उन्हें उसी समय वैराग्य हो गया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना की। तब समस्त राजपाट त्याग कर सर्वार्थसिद्धि नामक पालकी में आरूढ़ होकर सहस्राम्र वन में जाकर, वस्त्राभूषणों का त्यागकर, पंचमुष्ठि केशलोंच करके, दिगम्बर जिनदीक्षा धारण करते ही सामायिक चारित्र सम्बन्धी विशुद्धता तथा मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त किया। इनके साथ एक हजार राजाओं ने मुनि दीक्षा धारण की थी।

दीक्षा के बाद मन्दिरपुर नगर में सुमित्र नामक राजा ने अपने परिवार के साथ बडे हर्ष तथा नवधाभक्ति पूर्वक प्रथम आहार दान दिया और पंचाश्चर्य प्राप्त किये। अपनी कठोर तपस्या से पौष शुक्ला दशमी के दिन संध्या काल के समय में क्षपकश्रेणी चढ़कर शुक्लध्यान के द्वारा चार घातिया कर्मों को नष्टकरके केवल ज्ञान को प्राप्त किया। देवों ने आकर कैवल्य प्राप्ति का उत्सव किया और सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। जिसमें 36 गणधर, 62000 मुनिराज, 60350 हरिषेणा आदि आर्यिकायें, सुरकीर्ति आदि 1 लाख श्रावक और अर्हदासी आदि 3 लाख श्राविकायें थीं।

भगवान् ने दिव्यध्वनि के माध्यम से सप्ततत्त्व, नवपदार्थ, षड्द्रव्य आदि का यथार्थ वर्णन कर जिनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया।

इसी प्रकार देश देशान्तरों में विहार करते हुए जब एक माह की आयु शेष रह गयी तब सम्मेदशिखर जी में विहार पूर्ण कर अचलयोग से विराजमान हो गये तथा ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सम्पूर्ण कर्मों को नष्टकरके निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया।

अभ्यास-प्रश्न

1. तीर्थंकर बालक शान्तिनाथ का जन्म कहाँ हुआ था ?
2. तीर्थंकर बालक शान्तिनाथ के माता पिता का नाम बताइए।
3. तीर्थंकर शान्तिनाथ किन किन पदों के धारी थे ?
4. तीर्थंकर शान्तिनाथ को किस कारण से वैराग्य हुआ था ?
5. तीर्थंकर मुनि शान्तिनाथ का प्रथम आहार कहाँ हुआ था ?

पाठ-3

चार प्रकार का दान

अपने तथा अन्य के कल्याण के लिए धन खर्च करना दान कहलाता है। दान के चार भेद होते हैं।

आहार-दान-खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय ये चार प्रकार का आहार भक्तिपूर्वक चतुर्विध संघ को प्रदान करना आहार दान कहलाता है।

ज्ञान (शास्त्र) दान-चतुर्विधसंघ के ज्ञानवर्धन हेतु उनको शास्त्र भेंट करना ज्ञान-दान कहलाता है।

औषधि-दान-चतुर्विध संघ का कष्टदूर करने हेतु अनुकूल औषधि प्रदान करना औषधि-दान कहलाता है।

अभय-दान-चतुर्विध संघ को ठहरने हेतु वसतिका (ठहरने का स्थान) प्रदान करना अभयदान कहलाता है।

दान का उत्तम फल पात्रों को देने से ही प्राप्त होता है। पात्र तीन प्रकार के होते हैं

1. उत्तम-पात्र, 2. मध्यम-पात्र, 3. जघन्य-पात्र

1. उत्तम-पात्र-रत्नत्रय से युक्त आचार्य, उपाध्याय और साधु उत्तमपात्र के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार आदि दान देना चाहिए।

2. मध्यम-पात्र-आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक तथा प्रतिमाधारी श्रावक मध्यम-पात्र के अन्तर्गत आते हैं। इन्हें विनयपूर्वक आहार आदि दान देना चाहिए।

3. जघन्य-पात्र-अविरतसम्यग्दृष्टिजीव जघन्यपात्र के अन्तर्गत आते हैं। इनकी यथायोग्य विनय करते हुए आहार आदि दान देना चाहिए।

नवधाभक्ति इस प्रकार है

1. पड़गाहन, 2. उच्चासन, 3. पाद-प्रक्षालन, 4. पूजन, 5. नमस्कार करना, 6. मनशुद्धि, 7. वचनशुद्धि, 8. कायशुद्धि, 9. आहारशुद्धि

अभ्यास-प्रश्न

1. दान कितने प्रकार का होता हैं ? नाम लिखें ?
2. पात्र कितने प्राकर के होते हैं ? नाम लिखें ?
3. नवधाभक्ति कौन-कौन-सी हैं ? नाम लिखें ?

पाठ–4

चौका शुद्धि

चौका का अर्थ होता है चार, शुद्धि का अर्थ शुद्धता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि होना चौका की शुद्धि है। चौका से तात्पर्य है भोजन बनाने का एवं भोजन करने का स्वच्छ स्थान।

उपर्युक्त चार प्रकार की शुद्धियों के चार–चार भेद हैं, इस प्रकार सब मिलाकर सोलह भेद हो जाते हैं, जिसे श्रावक गण सोला कहते हैं। सोलह प्रकार की शुद्धि इस प्रकार है :

(1) द्रव्य शुद्धि – आहार में उपयोग आने वाली समस्त वस्तुओं की शुद्धि द्रव्य शुद्धि है।

1. अन्न शुद्धि–खाद्य सामग्री सड़ी, गली, घुनी न हो। उसे यथोचित धोकर धूप में सुखा लें। बिना धुले अन्न, मसाले आदि का प्रयोग योग्य नहीं हैं। गेहूँ आदि को सूख जाने के पश्चात् हाथ की चक्की या घर में लगी इलेक्ट्रिक चक्की से पीसना चाहिए एवं मर्यादित वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए प्लास्टिक, चीनी मिट्टी के बर्तन का उपयोग नहीं करना चाहिए।

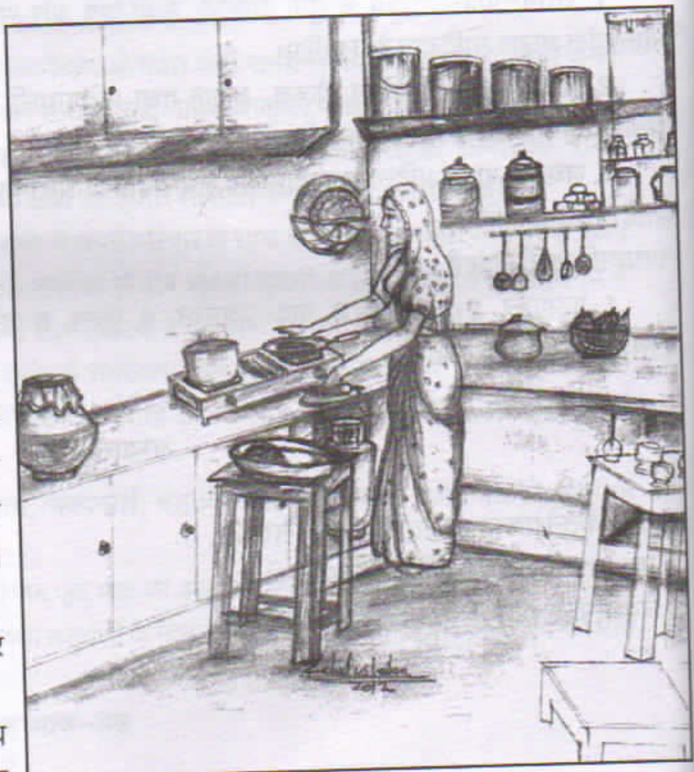

2. जल शुद्धि–जल शुद्धि में दो बातें आती हैं–पहली जल को छानना और दूसरी जल में से निकले जीवों की रक्षार्थ जीवाणी को यथास्थान पहुँचाना। जल छानने के लिए ऐसे मोटे कपड़े का प्रयोग करना चाहिए, जिससे सूर्य की रोशनी न दिखे। जल छानने का कपड़ा दोहरा रहना चाहिए जल छानने के पश्चात् छन्ने को तुरंत ही सुखाना चाहिए क्योंकि अधिक देर गीला रहने से उसमें जीवाणु (बैक्टिरिया) की उत्पत्ति हो जाती है। जीवाणी करने में इतनी सावधानी अवश्य रखना चाहिए कि जीवाणी को कुंदे वाली बाल्टी द्वारा धीरे–धीरे कुँए में डालना चाहिए। छने पानी को तुरन्त उबाल लेना चाहिए।

3. अग्नि शुद्धि– ईंधन देख–शोधकर उपयोग करना चाहिए।

4. कर्ता शुद्धि–भोजन बनाने वाला स्वस्थ हो तथा नहा धोकर शुद्ध कपड़े पहने हो, नाखून बड़े न हो, इत्र, नेल पॉलिस, लिपिस्टिक, पाउडर इत्यादि न लगावें, रेशमी साड़ी एवं काले रंग, ऊनी व गीला तथा गन्दा कपड़ा न पहनें, अंगुली बगैरह कट जाने पर खून का स्पर्श खाद्य वस्तुओं से न हो, गर्मी में पसीना का स्पर्श न हो, पसीना खाद्य वस्तुओं में न गिरे।

(2) क्षेत्र शुद्धि – आहार का स्थान स्वच्छ व शुद्ध होना क्षेत्र शुद्धि है।

1. प्रकाश शुद्धि– रसोई में पर्याप्त सूर्य का प्रकाश रहता हो।

2. वायु शुद्धि– रसोई में शुद्ध हवा का आवागमन हो।

3. स्थान शुद्धि– आवागमन का सार्वजनिक स्थान न हो, जाले न हो, स्वच्छ धुला हुआ होना चाहिए, कच्चे मकानों में चंदोबा होना आवश्यक है।

4. दुर्गंधता से रहित– हिंसादिक कार्य न होता हो, आस–पास मांस– मछली की दुकान न हो, कत्लखाना न हो, किसी प्रकार की बदबू न आती हो।

(3) काल शुद्धि – योग्य समय का होना।

1. ग्रहण काल शुद्धि– चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण का काल न हो।

2. शोक काल शुद्धि– शोक, दुःख अथवा मरण का काल न हो।

3. रात्रि काल शुद्धि– रात्रि का समय न हो।

4. प्रभावना काल शुद्धि–धर्म प्रभावना अर्थात् उत्सव का काल न हो।

(4) भाव शुद्धि – परिणामों की शुद्धि का होना।

1. वात्सल्य भाव– पात्र और धर्म के प्रति वात्सल्य होना।

2. करुणा भाव– सब जीवों एवं पात्रों के ऊपर दया का भाव।

3. विनय भाव– पात्र के प्रति विनय के भावों का होना।

4. दान भाव– कषाय रहित और हर्ष सहित वस्तु को हितकारी भाव से देना।

प्रत्येक श्रावक को सोलह प्रकार की शुद्धि को जानकर आहार तैयार करके देना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. चौका की परिभाषा लिखिए।
2. सोलह प्रकार की शुद्धि के नाम बताइए।
3. जल शुद्धि से आप क्या समझते हैं ?
4. भाव शुद्धियों के भेद समझाइये।
5. इस पाठ से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ–5

अभक्ष्य

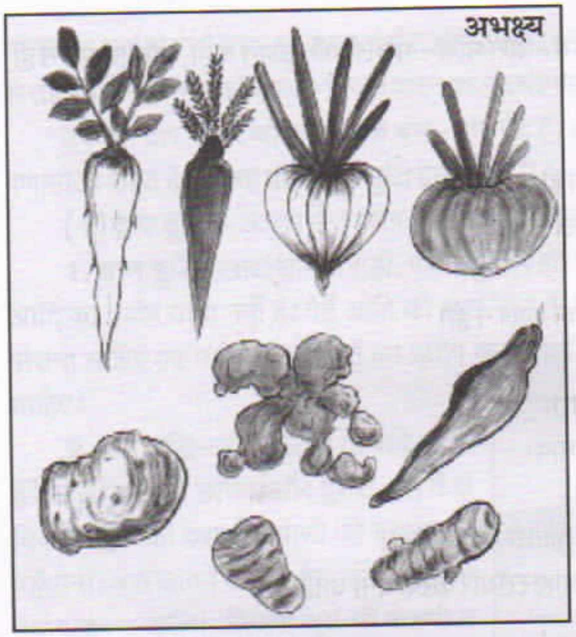

जो पदार्थ खाने (भक्षण करने) योग्य नहीं होता उसे अभक्ष्य कहते हैं।

अभक्ष्य के भेद

त्रसहिंसाकारक, बहुस्थावर हिंसाकारक, प्रमादकारक, अनिष्ट कारक और अनुपसेव्य ये पाँच अभक्ष्य हैं।

त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से त्रसजीवों का घात होता है, उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे वर्थ डे केक, विदेशी टॉफी, बाजार की मिठाई, अंडा, नॉनवेज, होटल का भोजन, पत्ता तथा फूल गोभी, घुना अन्न, अमर्यादित वस्तु, मुरब्बा, पुराना आचार और द्विदल आदि के खाने से त्रसजीवों का घात होता है।

बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है, उसे बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे–आलू, घुईया (अरबी), मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, अदरक, शकरकन्द, तुच्छफल और तरबूज आदि के खाने में अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है।

प्रमादकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से प्रमाद, आलस्य अथवा बुरी भावनायें आती हैं, उसे प्रमादकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे–शराब, भांग, चरस, कोकीन, बीड़ी, सिगरेट, गुटका, तम्बाखू, गांजा और अफीम आदि नशीली वस्तुयें। इन चीजों के खाने से प्रमाद बढ़ता है।

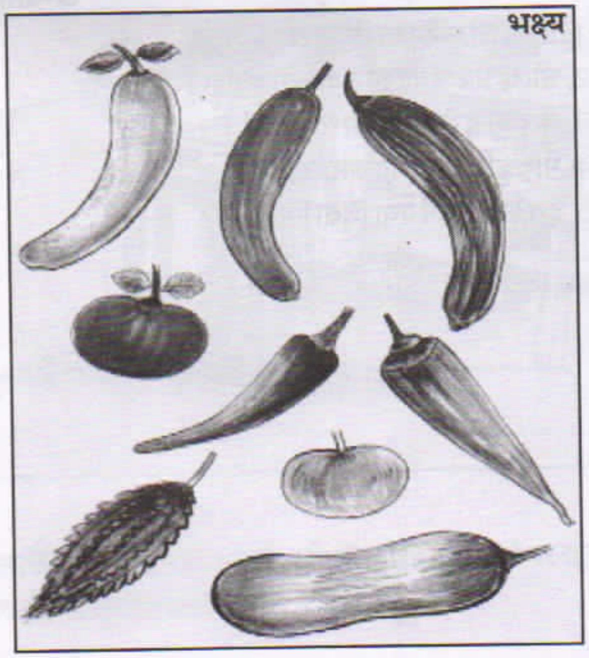

अनिष्ठकारक अभक्ष्य

जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी पथ्य (हितकर) नहीं होता, उसे अनिष्ठकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे खांसी के रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को हलुवा खाना और जुकाम वाले को ठण्डी वस्तु खाना अनिष्ठकारक है अर्थात् हितकर नहीं है।

अनुपसेव्य अभक्ष्य

जिस पदार्थ को खाना अपने समाज तथा धर्म वाले बुरा समझते हैं, उसे अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते हैं। जैसे-शंख, हाथीदांत, कस्तूरी, स्वमूत्र, गोमूत्र आदि पदार्थ।

अभक्ष्य पदार्थों के नाम

ओला, घोलबड़ा, निशि भोजन, बहुबीजा, बैगन, संधान।
बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर फल या होय अजान।।
कन्दमूल, माटी विष आमिष, मधु, मक्खन अरु मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस, ये बाईस अभक्ष्य बखान।

शब्दार्थ- घोलबड़ा = चना, मूंग, उड़द आदि पदार्थों के दलने पर बराबर-बराबर दो टुकड़े हो जाते हैं, उनके साथ दही या छाछ से कढ़ी बनाकर खाना, रायता बनाकर खाना, खिचड़ी में दही मिलाकर खाने से द्विदल होता है। ऐसे द्विदल के मुख में जाने से जीभ में लार के संयोग से सम्मूर्च्छन त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। जिससे महाहिंसा का पाप लगता है। **बहुबीजा** = जिस फल में बीजों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान नहीं होता अर्थात् जिसमें दल के भीतर बीजों का घर नहीं होता। जैसे-बैंगन आदि, **सन्धान** = अचार, **कठूमर** = कटहल, **अजान फल** = कोई फल या शाक, जिसे हम पहचानते नहीं हैं, **कन्दमूल**-जमीन के अन्दर पैदा होने वाली वस्तुयें। जैसे-आलू, अदरक आदि, **आमिष**= मांस, **तुच्छफल** = जिस फल में बीज नहीं आ पाये और जो बहुत छोटा होता है परन्तु बढ़ सकता है, **तुषार** = बर्फ, **चलितरस** =जिसका स्वाद बिगड़ गया है, अर्थात् जिसमें खटास या दुर्गंध आ गई हो।

अभ्यास प्रश्न

1. अभक्ष्य किसे कहते हैं ?
2. अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं और कौन-कौन से हैं ?
3. त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य और बहुस्थावरहिंसाकारक अभक्ष्य में अन्तर लिखिए।
4. अभक्ष्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार छांटिए।

आलू खाना, बीयर पीना, नॉनवेज होटल का भोजन करना।

5. 22 अभक्ष्यों के नाम लिखो ?

पाठ-6

दशलक्षण एवं सोलहकारण पर्व

सम्पूर्ण हिन्दी मासों में भाद्रपद का मास सबसे पवित्र है क्योंकि इस मास में सबसे अधिक व्रत आते हैं। जैसे :- दशलक्षण, षोडशकारण, रत्नत्रय, पुष्पांजलि, आदि।

यह पर्व वर्ष में तीन बार माघ-चैत्र-भाद्रपद मास में आता है। परन्तु सामान्यतः यह पर्व भाद्रपद में ही मनाया जाता है। श्वेताम्बर आम्नाय वाले इस पर्व को भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी से भाद्रपद शुक्ला पंचमी तक तथा दिगम्बर आम्नाय वाले इस पर्व को भाद्रपद शुक्ला पंचमी से प्रारम्भ होकर अनंत चतुर्दशी तक 10 दिन मनाते हैं।

इस पर्व में आत्मा के दश गुणों की आराधना की जाती है। इनका सीधा सम्बन्ध आत्मा के कोमल परिणामों से है। इस पर्व का वैशिष्ट्य है कि इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर आत्मा के गुणों से है। इन गुणों में से एक गुण की भी परिपूर्णता हो जाय तो मोक्ष तत्त्व की उपलब्धि होने में किंचित् भी सन्देह नहीं रह जाता है।

धर्माचरण के माध्यम से शान्ति प्रदायक पर्वों में दशलक्षण पर्व शीर्ष स्थान पर है। इसलिए इसे पर्वाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया है। ये उत्तम दशधर्म आत्मा के भावनात्मक परिवर्तन से उत्पन्न विशुद्ध परिणाम हैं। जो आत्मा को अशुभ कर्मों के बन्ध से रोकने के कारण संवर के हेतु हैं। ख्याति, पूजा आदि से निरपेक्ष होने के कारण इनमें उत्तम विशेषण लगाया गया है।

भादवा की मुख्यता व मनाने का कारण-जब कोई नया काल शुरू होता है तो श्रावण वदी एकम् से शुरू होता है। जब प्रलय के बाद उत्सर्पिणी काल का प्रारंभ श्रावण वदी एकम् से होगा, तो 7-7 दिन तक 7 प्रकार की वर्षा के उपरांत भादो सुदी पंचमी को सभी छुपे लोग बाहर आकर हर्ष मनाते हैं । यह उसी उल्लास के प्रतीक है।

1. उत्तम क्षमा धर्म :- क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना क्षमा है। समर्थ रहने पर भी क्रोधोत्पादक निन्दा, अपमान, गाली-गलौज आदि प्रतिकूल व्यवहार होने पर भी मन में कलुषता न आने देना उत्तम क्षमा धर्म है।

2. उत्तम मार्दव धर्म :- चित्त में मृदुता और व्यवहार में विनम्रता ही मार्दव है। यह मान कषाय के अभाव में प्रकट होता है। जाति, कुल, रूप, ज्ञान, तप, वैभव, प्रभुत्व, ऐश्वर्य सम्बन्धी अभिमान मद कहलाता है। इन्हें विनश्वर समझकर मानकषाय को जीतना उत्तम मार्दव धर्म कहलाता है।

3. उत्तम आर्जव धर्म :- आर्जव का अर्थ-ऋजुता सरलता होता है। मन में कुछ, वचन में कुछ, प्रकट में कुछ प्रवृत्ति ही मायाचारी है। इस माया कषाय को जीतकर मन, वचन और काय की क्रिया में एकरूपता लाना उत्तम आर्जव धर्म है।

4. उत्तम शौच धर्म :- शौच का अर्थ-पवित्रता है। अपने हृदय में मद क्रोधादिक बढ़ाने वाली जितनी भी दुर्भावनायें हैं, उनमें सबसे प्रबल लोभ कषाय है। इस लोभ पर विजय पाना ही उत्तम शौच धर्म है।

5. उत्तम सत्य धर्म :- दूसरों के मन को संताप उत्पन्न करने वाले निष्ठुर, कर्कश और कठोर वचनों का त्याग कर सबसे हितकारी और प्रियवचन बोलना उत्तम सत्य धर्म है।

6. उत्तम संयम धर्म :- संयम का अर्थ है-आत्म नियन्त्रण। पाँचों इन्द्रिय एवं मन की प्रवृत्तियों पर अंकुश रखकर उनकी अनर्गल प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखना और षट्काय के जीवों की विराधना न करना, उत्तम संयम धर्म है।

7. उत्तम तप धर्म :– इच्छाओं के निरोध को तप कहते हैं। विषय कषायों का निग्रह करके बारह प्रकार के तपों में चित्त लगाना, उत्तम तप धर्म है। तप धर्म का मुख्य उद्देश्य चित्त की मलिन वृत्तियों का उन्मूलन है।

8. उत्तम त्याग धर्म :–परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते हैं। बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा के अपने पास होने वाली ज्ञानादि सम्पदा को दूसरों के हित व कल्याण के लिए लगाना उत्तम त्याग धर्म है।

9. उत्तम आकिञ्चन्य धर्म :– ममत्व के परित्याग को आकिञ्चन्य कहते हैं। आकिञ्चन्य का अर्थ होता है कि मेरा कुछ भी नहीं है। अपने उपकरणों एवं शरीर से भी निर्ममत्व होना ही उत्तम आकिञ्चन्य धर्म है। क्योंकि कई बार सबका त्याग करने के बाद भी उस त्याग के प्रति ममत्व हो सकता है। आकिञ्चन्य धर्म में उस त्याग के प्रति होने वाले ममत्व का भी त्याग कराया जाता है।

10. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म :– आत्मा में रमण करना ब्रह्मचर्य है। रागोत्पादक साधनों के होने पर भी उन सबसे विरक्त होकर आत्मोन्मुखी बने रहना, उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

सोलहकारण पर्व

प्रतिवर्ष सोलहकारण पर्व वर्ष में तीन बारभाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक मनाया जाता है। सामान्यतः यह पर्व 31 दिन का होता है।

इस पर्व में सोलहकारण भावनाओं का चिन्तन किया जाता है। शास्त्रों में 16 भावनायें कही गई हैं। इन भावनाओं से तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध होता है। इस कर्मप्रकृति के उदय से समवशरण एवं पंचकल्याणक रूप विभूति प्राप्त होती है।

इन भावनाओं का विवेचन इस प्रकार है :–

(1) दर्शनविशुद्धि :–दर्शन शब्द का अर्थ है यथार्थ श्रद्धान अर्थात् जिनेन्द्रदेव द्वारा बताये गये मार्ग का 25 दोषों से रहित और आठ अंगों से सहित पूर्ण श्रद्धान करना ही दर्शनविशुद्धि भावना है।

इस भावना का होना परम आवश्यक है। क्योंकि इसके न होने पर और शेष सबके अथवा कुछ के होने पर भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है।

(2) विनयसम्पन्नता :–सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं वीर्य की, इनके कारणों की तथा इनके धारकों की विनय करना तथा गुणों तथा आयु में वृद्ध पुरुषों का यथायोग्य आदर सत्कार करना विनयसम्पन्नता कहलाती है।

(3) शीलव्रतेषु अनतिचार :– अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं तथा इनके पालन में सहायक क्रोधादि का त्याग करना शील कहलाता है। व्रत और शीलों का निर्दोष रीति से पालन करना ही शीलव्रतेषु अनतिचार है।

(4) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग :– सदैव ज्ञानाभ्यास में लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। जो व्यक्ति निरन्तर धार्मिक ज्ञानाभ्यास करता है, उसके हृदय में मोह रूपी महान् अन्धकार निवास नहीं करता है।

(5) अभीक्ष्ण संवेग :– सांसारिक विषय भोगों से डरते रहना अभीक्ष्ण संवेग है।

(6) शक्तितस्: त्याग :– अपनी शक्ति को न छिपाते हुए आहार, औषधि, अभय, उपकरण आदि का दान देना शक्तितस्: त्याग है।

(7) शक्तितस्: तप :–अपनी शक्ति को न छिपाकर मोक्षमार्ग में उपयोगी तपानुष्ठान करना शक्तितस्: तप है।

(8) साधुसमाधि :–दिगम्बर साधु के तप में उपस्थित आपत्तियों का निवारण करना तथा उनके संयम की रक्षा करना, साधु समाधि है।

(9) वैयावृत्यकरण :–गुणी पुरुषों की साधना में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करना एवं उनकी सेवा सुश्रूषा करना, वैयावृत्यकरण है।

(10–13) अर्हत्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति– अरिहन्त–आचार्य–बहुश्रुतप्रवचन (शास्त्र) इन चारों में शुद्ध निष्ठापूर्वक अनुराग रखना ही अरिहंत–आचार्य–बहुश्रुत–प्रवचन भक्ति है। बहुश्रुत का अर्थ उपाध्याय है। प्रवचन का अर्थ जिनवाणी है।

(14)आवश्यकापरिहाणि:– सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। इन छह आवश्यक क्रियाओं को यथाकाल अविच्छिन्न रूप से करते रहना आवश्यकापरिहाणि है।

(15) मार्गप्रभावना :–अपने श्रेष्ठज्ञान और आचरण से मोक्षमार्ग का प्रचार–प्रसार करना मार्गप्रभावना है।

(16) प्रवचनवत्सलत्व :–गाय के बछड़े की तरह साधर्मी जनों से निच्छल–निष्काम स्नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है।

अभ्यास प्रश्न

1. भाद्रपद माह क्यों पवित्र होता है ?
2. दशलक्षण पर्व वर्ष में कितनी बार आता है ?
3. दस धर्मों के बारे में संक्षेप में बताइए।
4. सोलहकारण पर्व कब से कब तक मनाया जाता है ?
5. सोलहकारण भावना का चिन्तन करने से क्या लाभ है ?
6. सोलह भावनाओं में से कौनसी भावना सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ?
7. अभीक्षणज्ञानोपयोग किसे कहते हैं, इससे क्या लाभ है ?
8. शक्तितः तप, त्याग से आप क्या समझते हैं ?
9. दशलक्षण पर्व क्यों मनाया जाता है ?

पाठ–7

तीर्थंकर नेमिनाथ

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के कुशार्थ देश में शौर्यपुर / द्वारावती नगरी के हरिवंश शिखामणि राजा समुद्रविजय थे, उनकी रानी का नाम शिवादेवी था। महारानी ने श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में जयन्त विमानवासी अहमिन्द्र को तीर्थंकर पुत्र के रूप में जन्म दिया। भगवान् नमिनाथ की तीर्थ परम्परा के बाद पाँच लाख पूर्व बीत जाने पर भगवान् नेमिनाथ का जन्म हुआ था। भगवान् नेमिनाथ की आयु एक हजार वर्ष थी तथा शरीर 10 धनुष (अर्थात् –60 फुट) ऊँचा था।

राजकुमार नेमिनाथ एक बार सत्यभामा के व्यंग्य पर नारायण श्रीकृष्ण की आयुध शाला में पहुँचकर नागशय्या पर चढ़ गये। धनुष की डोरी को भी चढ़ा दिया और दिशाओं के अन्तराल को रोकने वाला शंख फूंक दिया। जिस समय आयुधशाला में यह सब हुआ, उस समय श्रीकृष्ण कुसुमचित्रा नाम की सभाभूमि में विराजमान थे। इस आश्चर्यपूर्ण कार्य को सुनकर उनका मन व्याकुल हो गया। तब अर्द्धचक्री श्रीकृष्ण ने बड़ी सावधानी से विचारकर कुमार नेमिनाथ के विवाह की योजना बनाई और नेमिकुमार का उग्रवंशी राजा उग्रसेन की रानी जयावती की प्रियपुत्री राजुल से सम्बन्ध करा दिया।

श्रावण मास में यादवों की बारात सज–धजकर द्वारिका से जूनागढ़ पहुँची। उस बारात का वैभव अद्वितीय था। राजकुमारी राजुल वधू के वेश में साक्षात् रति लग रही थी।

जैसे ही नेमिकुमार के रथ ने नगरी में प्रवेश किया तभी उनकी दृष्टिएक मैदान के बाड़े में बँधे हुए तृणभक्षी पशुओं पर पड़ी। तब सारथी से कारण पूछने पर उत्तर मिला कि विवाहोत्सव में जो माँसभक्षी म्लेच्छ राजा आये हैं, उनके लिए नाना प्रकार का मांस तैयार करने के लिए पशुओं को बाँधा गया है। यह सुनते ही नेमिकुमार का दया से ओत प्रोत हृदय विवाह के लिए उत्सुक नहीं रहा। मन में सांसारिक सुखों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो गई और वे राजुल से विवाह न करके विरक्त हो गये।

तदनन्तर श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन, गिरनार के सहस्राम्र वन में संध्या काल के समय में तीन सौ वर्ष कुमार काल के बीत जाने पर, एक हजार राजाओं के साथ जिनदीक्षा धारण कर ली।

राजकुमारी राजुल ने भी विरक्त होकर नेमिनाथ के ही मार्ग पर चलकर आर्यिका दीक्षा धारण कर ली।

भगवान् नेमिनाथ की प्रथम पारणा द्वारावती नगरी के राजा वरदत्त ने नवधाभक्ति पूर्वक कराई।

छद्‌मस्थ अवस्था के 56 दिन बीत जाने के बाद रैवतक पर्वत पर महाविष्णु (बड़े बाँस) वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गये और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल के समय घातिया कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें 18 हजार मुनि, 40हजार आर्यिका, 1 लाख श्रावक, 3 लाख श्राविका, असंख्यात देव-देवियाँ तथा संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए भगवान् ने 699 वर्ष 9 माह चार दिन विहार किया।

तत्पश्चात् 533 मुनियों के साथ 1 मास का योग निरोधकर गिरनार पर्वत से ही आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन रात्रि के आरम्भिक काल में ही सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर सिद्धपद को प्राप्त कर लिया।

अभ्यास प्रश्न

1. तीर्थंकर नेमिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. बालक नेमिनाथ के माता पिता का क्या नाम था ?
3. श्री कृष्ण ने नेमिनाथ के विवाह की योजना क्यों बनाई ?
4. राजा नेमिनाथ के वैराग्य का क्या कारण था ?
5. समवशरण में किसकी कितनी संख्या थी ?

पाठ–8

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥१॥
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार ।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार ॥२॥
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान ॥३ ॥
आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय ।
यँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥४॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय ।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥
दिपै चाम चादर मढ़ी , हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥६॥
मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा ।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटें सुध नहीं॥७ ॥
सत्गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकें ॥८॥
ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसै नहीं, बैठे पूरब चोर ॥
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार ॥९॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥१०॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥११॥
जाँचे सर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन ॥१२॥

पाठ–9

सेठ सुदर्शन

अङ्गदेश में चम्पानगरी की राजधानी में वृषभदत्त नामक एक सेठ रहता था। जिसकी अर्हद्दासी नामक पत्नी थी। उसी सेठ के यहाँ एक ग्वाला सेवक था। एक दिन वह वन से अपने घर आ रहा था। मार्ग में शिला पर बैठे हुये एक मुनिराज को ध्यान लगाये देखा और मुनिराज के निकट पहुँचा। उसने ओस से भीगी मुनिराज की समस्त काया को विनयपूर्वक पोंछा और रात्रि भर मुनिराज की सेवा की। प्रातःकाल जब मुनिराज का ध्यान टूटा तो उन्होंने ग्वाले को पंचनमस्कार मंत्र दिया। ग्वाला उस मंत्र की रट लगाने लगा और उठते–बैठते, सोते–जागते उसी मंत्र का उच्चारण करता रहता था। एक दिन ग्वाले की गायें नदी पार करने लगीं। तब वह भी नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए उनके पीछे नदी में कूद गया। दुर्भाग्य से नदी में कूदते ही एक नुकीली लकड़ी उसके पेट में घुस गयी। जिससे ग्वाले का प्राणान्त हो गया परन्तु णमोकार मंत्र के प्रभाव से वह ग्वाला, सेठ वृषभदत्त के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सुदर्शन रखा गया।

कालक्रम से सुदर्शन युवक हो गया। उसी नगरी में सागरदत्त सेठ भी रहता था। उसकी पत्नी का नाम सागरसेना था। मनोरमा उनकी कन्या थी। उसी के साथ सुदर्शन का विवाह हुआ।

एक दिन सेठ वृषभदत्त समाधिगुप्त महामुनि के दर्शन के लिये गया। वहाँ मुनिराज के धर्मोपदेश से वैराग्य जागृत हो गया और सेठ ने जिनदीक्षा धारण कर ली। उससे सुदर्शन के ऊपर गृह–परिवार, व्यवसाय आदि का दायित्व आ पडा। सेठ सुदर्शन हमेशा सदाचार, श्रावक–व्रत पालन तथा दान पुण्यकर्म में अपना जीवन व्यतीत करता था।

मगध अधिपति महाराज गजवाहन स्वयं भी उसे खूब मानते थे। एक दिन वे सुदर्शन के साथ उपवन में भ्रमण कर रहे थे। उनकी पत्नी भी साथ में थी। वह सुदर्शन के रूप–सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गयी।

सेठ सुदर्शन संसार में रहते हुए भी संसार से स्वतंत्र होना चाहते थे। इसलिए वे कभी–कभी ध्यान में लीन रहते थे। वे अष्मी और चतुर्दशी की तिथियों में रात्रि के समय प्रायः श्मशान में जाया करते थे और आत्मध्यान में लीन रहते थे। एक दिन रानी की आज्ञा से दासी ने कायोत्सर्ग ध्यान मुद्रा में लीन सुदर्शन को उठाकर महल में पहुँचा दिया।

रानी की अनेक कुचेष्टाओं से भी सेठ सुदर्शन का चित्त विचलित नहीं हुआ। तब रानी लज्जित होकर सुदर्शन को फँसाने का प्रयत्न करने लगी और अपने शरीर को नोंचकर चिल्लाने लगी। तब राजा ने सेठ सुदर्शन को शूली पर चढ़ा देने का दण्ड घोषित किया। दण्ड के समय पुण्य प्रताप एवं देवों के अतिशय से शूली पुष्पमाला बन गई। तब राजा ने सत्य वार्ता को जानकर सुदर्शन से क्षमा मांगी एवं रानी और दासी को दण्ड दिया।

परन्तु इस घटना से सुदर्शन के अन्तःस्थल में अत्यधिक वैराग्य भाव जागृत हो गया। उसने उसी समय अपने पुत्र सुकान्तवाहन को परिवार का दायित्व सौंपकर विमलवाहन मुनिराज से जिनदीक्षा धारण कर ली। कुछ समय बाद केवलज्ञान को प्राप्त किया और अन्त में सबको आत्महित का (कल्याण का) मार्ग दिखलाते हुए मोक्षधाम को प्राप्त किया।

महामुनि सुदर्शन स्वामी को गुलजारबाग, पटना से निर्वाण प्राप्त हुआ। प्रत्येक वर्ष यहाँ पौष शुक्ल पंचमी को निर्वाण महोत्सव मनाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. किस मंत्र के प्रभाव से ग्वाला सेठ सुदर्शन बना ?
2. सेठ सुदर्शन के माता–पिता का नाम बताइए।
3. सेठ सुदर्शन के पत्नी–पुत्र व सास–ससुर का नाम बताइए ?
4. सेठ सुदर्शन ने एवं उनके पिता ने किन मुनिराज से जिनदीक्षा ली थी ?
5. सेठ सुदर्शन की कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ–10

दर्शन स्तुति

अहो! जगतगुरु देव, सुनियो अरज हमारी।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी।।१।।
इस भव-वन के माहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रमत चहुँ-गति माहिं, सुख नहिं, दुख बहु पायो।।२।।
कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी।
मनमान्यां दुख देहिं, काहू सों नाहिं डरै जी।।३।।
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ, नर्क दिखावै।
सुर-नर-पशु-गति माहिं, बहुविधि नाच-नचावै।।४।।
प्रभु! इनके परसंग, भव-भव माहिं बुरो जी।
जे दुख देखे देव! तुमसों नाहिं दुरो जी।।५।।
एक जनम की बात, कहि न सको सुनि स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अंतरजामी।।६।।
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे ।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ।।७।।
ज्ञान महानिधि लूट, रंक निबल करि डार्‌यो।
इनही तुम मुझ माहिं, हे जिन! अंतर पार्‌यो।।८।।
पाप पुण्य मिल दोय, पाँयनि बेरी डारी।
तन कारागृह माहिं, मोहि दियो दुख भारी।।९।।
इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
विन कारन जगवंद्य! बहुविधि वैर लियो जी।।१०।।
अब आयो तुम पास सुनि जिन ! सुजस तिहारो।
नीति-निपुन जगराय ! कीजे न्याय हमारो।।११।।
दुष्ट न देहु निकार, साधुनको रख लीजै ।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु! ढील न कीजै।।१२।।

पाठ–11

रेवती रानी

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी सम्बन्धी मेघकूट नगर का राजा चन्द्रप्रभ, अपने चन्द्रशेखर पुत्र के लिये राज्य देकर परोपकार तथा वन्दना–भक्ति के लिये कुछ विद्याओं को धारण करता हुआ दक्षिण मथुरा गया और वहाँ गुप्ताचार्य के समीप क्षुल्लक हो गया। एक समय वह क्षुल्लक, वन्दना–भक्ति के लिये उत्तर मथुरा की ओर जाने लगा। जाते समय उसने गुप्ताचार्य से पूछा कि क्या किसी से कुछ कहना है ? गुप्ताचार्य ने कहा कि सुव्रत मुनि को वन्दना और वरुण–राजा की महारानी रेवती के लिये आशीर्वाद कहने के योग्य है। क्षुल्लक ने तीन बार पूछा फिर भी उन्होंने इतना ही कहा। तदनन्तर क्षुल्लक ने विचार किया कि वहाँ ग्यारह अंग के धारक भव्यसेनाचार्य तथा अन्य धर्मात्मा लोग भी रहते हैं, जिनका इन्होंने नाम भी नहीं लिया है। इसमें कुछ कारण अवश्य होगा ऐसा विचारते हुए क्षुल्लक उत्तर मथुरा चला गया। वहाँ जाकर उसने सुव्रत मुनि के लिए गुप्ताचार्य की वन्दना कही। सुव्रत मुनि ने परम वात्सल्य भाव दिखलाया। वह उनके दर्शन कर भव्यसेन की वसतिका में गया। क्षुल्लक के वहाँ पहुँचने पर भव्यसेन ने उससे संभाषण भी नहीं किया। भव्यसेन शौच के लिये बाहर जा रहे थे सो क्षुल्लक उनका कमण्डलु लेकर उनके साथ बाह्य भूमि में गया और विक्रिया से उसने आगे ऐसा मार्ग दिखाया जो कि हरे–हरे कोमल तृणों के अंकुरों से आच्छादित था। उस मार्ग को देखकर क्षुल्लक ने कहा भी कि आगम में ये सब जीव कहे गये हैं। भव्यसेन आगम पर अरुचि–अश्रद्धा दिखाते हुये तृणों पर चले गये। क्षुल्लक ने फिर विक्रिया से कमण्डलु का पानी सुखा दिया। जब शुद्धि का समय आया तब कमण्डलु में पानी नहीं है तथा कहीं कोई विक्रिया भी नहीं दिखाई देती है यह देख वे आश्चर्य में पड गये। तदनन्तर उन्होंने स्वच्छ सरोवर के जल और उत्तम मिट्टी से शुद्धि की। इन सब क्रियाओं से उन्हें मिथ्यादृष्टिजानकर क्षुल्लक ने भव्यसेन का नाम अभव्यसेन रख दिया।

तदनन्तर क्षुल्लक ने दूसरे दिन पूर्व दिशा में पद्मासन पर स्थित, चारमुखों से सहित, यज्ञोपवीत आदि से युक्त तथा देव और दानवों से वन्दित ब्रह्मा का रूप दिखाया। राजा तथा भव्यसेन आदि लोग वहाँ गये परन्तु रेवती रानी लोगों से प्रेरित होने पर भी नहीं गई। वह यही कहती रही कि यह ब्रह्मा नाम का देव कौन है ? इसी प्रकार फिर उन क्षुल्लक ने दक्षिण दिशा में गरुड़ के ऊपर आरूढ़, चार भुजाओं से सहित तथा गदा, शंख आदि के धारक नारायण का रूप दिखाया। पश्चिम दिशा में बैल पर आरूढ़ तथा अर्ध चन्द्र, जटाजूट, पार्वती और गणों से सहित शंकर का रूप दिखाया परन्तु रेवती रानी फिर भी वहाँ नहीं गई। तब अन्त में उन क्षुल्लक ने उत्तर दिशा में समवशरण के मध्य में आठ प्रातिहार्यों से सहित, सुर, नर, विद्याधर और मुनियों के समूह से वन्द्यमान, पर्यंकासन से स्थित तीर्थंकर भगवान का रूप बनाया। वहाँ सब लोग गये, परन्तु रेवती रानी लोगों के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी नहीं गई। वह यही कहती रही कि नारायण नौ ही होते हैं, रुद्र ग्यारह ही होते हैं और तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं ऐसा जिनागम में कहा गया है। और वे सब हो चुके हैं, यह तो कोई मायावी है।

अगले दिन चर्या के समय उसने एक ऐसे क्षुल्लक का रूप बनाया, जिसका शरीर बीमारी से क्षीण हो गया था। वह रेवती रानी के घर के समीपवती मार्ग में मायामयी मूर्छा से गिर गया। रेवती रानी ने जब यह समाचार सुना तब वह

भक्तिपूर्वक उठाकर ले गई, उसका उपचार किया और पथ्य (उपचार) कराने के लिए उद्यत हुई। उस क्षुल्लक ने आहार करने के बाद दुर्गन्ध से युक्त वमन कर दिया। रानी ने वमन को दूर करके कहा के हाय मैंने प्रकृति के विरुद्ध अपथ्य आहार दिया। रेवती रानी के उक्त वचन सुनकर क्षुल्लक ने अपनी माया को संकोच कर हर्ष के साथ उसके लिए गुप्ताचार्य का आशीर्वाद कहा और लोगों के बीच उसकी अमूढ़-दृष्टिता की बहुत प्रशंसा की। यह सब कर क्षुल्लक अपने स्थान पर चला गया। राजा वरुण, शिवकीर्ति पुत्र के लिये राज्य देकर तथा तप ग्रहण कर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ तथा रेवती रानी भी तप कर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुई।

अभ्यास प्रश्न

1. गुप्ताचार्य ने किन-किन को क्या-क्या आशीर्वाद कहा ?
2. क्षुल्लक ने उत्तर मथुरा जाकर कौन-कौन से रूप बनाये ?
3. क्षुल्लक ने विभिन्न रूप बनाए फिर भी रेवती रानी वहाँ क्यों नहीं गई ?
4. क्षुल्लक ने 11 अंग पाठी भव्यसेन की परीक्षा किस प्रकार ली ?
5. क्षुल्लक ने आहार के समय क्या किया ?

पाठ–12

चार अनुयोग

जैन दर्शन के शास्त्रों को विषय के आधार से चार भागों में विभक्त किया है। वह इस प्रकार हैं

1. प्रथमानुयोग
2. करणानुयोग
3. चरणानुयोग
4. द्रव्यानुयोग

1. प्रथमानुयोग–जिन ग्रन्थों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरूषों के चारित्र का वर्णन हो, वे कथा चारित्र अथवा पुराण नाम से सम्बोधित किये जाने वाले ग्रन्थ प्रथमानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। जैसे– आदिपुराण, पद्मपुराण, श्रेणिकपुराण आदि।

2. करणानुयोग–जिन ग्रन्थों में लोक–अलोक के विभाग का उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के परिवर्तन का चारों गतियों का दर्पण के समान वर्णन हो ऐसे शास्त्र करणानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। जैसे–त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि।

3. चरणानुयोग–जो शास्त्र गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, विकास और रक्षा हेतु वर्णन करते हैं, वे चरणानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। जैसे–मूलाचार, पुरुषार्थसिद्धियुपाय, रत्नकरण्डकश्रावकाचार आदि।

4. द्रव्यानुयोग–जिन शास्त्रों में सात तत्त्व, छहद्रव्य, पंचास्तिकाय का वर्णन हो वे द्रव्यानुयोग के शास्त्र कहे जाते हैं। जैसे–कषायपाहुड, समयसार, परमात्मप्रकाश, द्रव्यसंग्रह आदि।

उपरोक्त चारों अनुयोगों के शास्त्रों के अध्ययन से हमें जैनधर्म के समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अतः हमें प्रतिदिन कुछ समय स्वाध्याय हेतु अवश्य निकालना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1.अनुयोग कितने होते हैं ?
2.चारों अनुयोगों का विषय बतायें।
3.चारों अनुयोगों के दो–दो ग्रन्थों के नाम बतायें।

पाठ-13

हमारे प्रमुख जैन तीर्थ

धर्मस्थान या पवित्र-स्थान को तीर्थक्षेत्र कहते हैं। तीर्थक्षेत्र की वदना करने से अनन्त पापों का क्षय हो जाता हैं तीर्थक्षेत्रों को दो भागों में बाँटा गया है-सिद्धक्षेत्र और अतिशयक्षेत्र।

सिद्धक्षेत्र-जिस स्थान से किन्हीं मुनिराज अथवा तीर्थंकरों ने निर्वाणपद (मोक्ष) प्राप्त किया है ऐसे स्थान को सिद्धक्षेत्र कहते हैं। प्रमुख सिद्धक्षेत्र इस प्रकार हैं -

(अ) सम्मेद शिखर जी- यह सिद्धक्षेत्र झारखंड राज्य के गिरिडीह जिले से लगभग 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इस सिद्धक्षेत्र से 20 तीर्थकरों के साथ (आदिनाथ, वासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर को छोड़कर) असंख्यात मुनियों ने मोक्षपद प्राप्त किया है। इसीलिए यह क्षेत्र तीर्थ स्थानों का ह्रदय है और 'तीर्थराज' की उपाधि से विभूषित है। अनादिकाल से सभी तीर्थंकर इसी पर्वत से मोक्ष जा रहे हैं, आगे भी जाएँगे।

(ब) चंपापुर जी- यह सिद्धक्षेत्र बिहार राज्य में स्थित है, इस क्षेत्र से वासुपूज्य भगवान ने मोक्षपद प्राप्त किया है।

(स) गिरनार जी- यह सिद्धक्षेत्र गुजरात प्रान्त के जूनागढ़ जिले में स्थित है यहाँ से नेमिनाथ भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया है।

(द) पावापुरी जी-यह सिद्धक्षेत्र बिहार प्रान्त में स्थित है, यहाँ से भ. महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया था।

ऐसे ही अनेक सिद्धक्षेत्र और भी हैं, जैसे-सोनागिर जी, द्रोणागिर जी, कुंडलपुर जी, तारंगा जी, आहार जी आदि।

अतिशय क्षेत्र-

जिस स्थान में किसी तीर्थंकर, मुनि आदि के प्रभाव से कोई अद्भुत कार्य हुआ हो अथवा देवों के द्वारा कोई चमत्कार दिखाया गया हो उसे अतिशयक्षेत्र कहते हैं।

प्रमुख अतिशय क्षेत्र इस प्रकार हैं-

(अ) श्रवणबेलगोला जी- यह क्षेत्र कर्नाटक प्रान्त के हसन् जिले के बेलगोला ग्राम में स्थित है, यहाँ पहाड़ी पर राजा चामुण्डराय द्वारा बनवाई 58 फुट ऊँची बाहुबली भगवान की प्रतिमा विराजमान है, इसकी सुंदरता इतनी अधिक है कि इसे विश्व का आठवाँ आश्चर्य कहा जाता है।

(ब) श्री महावीर जी- यह क्षेत्र राजस्थान प्रान्त के करौली जिले के चांदपुर ग्राम में स्थित है, यहाँ महावीर भगवान की प्रतिमा टीले से प्रकट हुई थी जिसका चमत्कार विश्वभर में प्रसिद्ध है।

(स) पपौरा जी- यह क्षेत्र मध्यप्रदेश प्रान्त के टीकमगढ़ जिले में स्थित है, इस स्थान पर पूर्व में एक कूप में मनोवांछित वस्तुओं की प्राप्ति होती थी, इस कारण यह स्थान पपौरा जी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

ऐसे ही अनेक क्षेत्र हैं-जैनबद्री जी, मूडबद्री जी, हस्तिनापुर जी, चंदेरी जी, अयोध्या जी, चमत्कार जी, पद्मपुरा जी, सांगानेर जी, चांदखेड़ी जी आदि।

अभ्यास प्रश्न

1.सिद्धक्षेत्र किसे कहते हैं ?

2.अतिशयक्षेत्र किसे कहते हैं ?

3.महावीर जी कौन-सा क्षेत्र है ?

पाठ-14

जम्बूस्वामी

अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमानस्वामी के मोक्ष जाने के बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। जम्बूस्वामी का जन्म राजगृह नगर में फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन राजमान्य सेठ अर्हद्दास के यहाँ हुआ था। इनकी माताजी का नाम जिनमती था।

श्रेष्ठि पुत्र जम्बूस्वामी का राजा श्रेणिक के दरबार में एवं तत्कालीन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। नगर के श्रीमंत अपनी-अपनी गुणवती कन्याओं का विवाह जम्बूस्वामी से कराना चाहते थे तथा पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री, रूपश्री इन चार कन्याओं के साथ उनकी सगाई भी पक्की हो गई थी। परन्तु जम्बूस्वामी बचपन से ही वैराग्य रस में पगे हुये थे, वे संसारिक विषयों के मायाजाल में बिल्कुल फँसना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। उनके इस निर्णय पर उक्त चार कन्याओं के पिताओं ने कहा कि आप इनके साथ विवाह तो कर लें, चाहे भले ही बाद में दीक्षा ले लेवें, पर विवाह से इन्कार न करें। क्योंकि वे जानते थे कि ये सर्वांग सुन्दरी कन्यायें, अपने रूप और गुणों के द्वारा जम्बूकुमार के मन को अवश्य रंजायमान कर लेंगी और फिर जम्बूकुमार वैराग्य की बातें भूल जावेंगे। बाद में जम्बूकुमार का चारों कन्याओं से विवाह भी हो गया।

विवाह की अगली रात्रि में जब चारों नवपरिणिताओं के साथ जम्बूकुमार थे तब उन चारों नववधुओं ने अपने हाव-भाव, रूप-लावण्य, सेवाभाव एवं बुद्धि-चातुर्य से उनको रिझाने का पूरा प्रयत्न किया। पर वे जम्बूकुमार के मन को रंचमात्र भी विचलित न कर सकीं। उनके ज्ञान और वैराग्य का प्रभाव तो उस विद्युच्चर नामक चोर पर भी पडा। जो उसी रात जम्बूस्वामी के महल में चोरी करने आया था, लेकिन जम्बूकुमार तथा उनकी नव-परिणिता स्त्रियों की चर्चा को सुनकर प्रभावित हो गया था।

प्रात:काल उन चारों नववधुओं की दृष्टि भी विषयकषाय से हटकर वैराग्यमयी हो गयी और जम्बूस्वामी की मुनिदीक्षा के साथ उन चारों ने भी आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। इसी प्रकार विद्युच्चर नामक चोर ने भी अपने 500 साथियों के साथ मुनिदीक्षा धारण कर ली। और सारा वातावरण ही वैराग्यमय हो गया। जम्बूस्वामी मुनि अवस्था को धारणकर निरन्तर आत्मसाधना में मग्न रहने लगे और माघ सुदी सप्तमी के दिन जब उनके गुरु सुधर्माचार्य को निर्वाण हुआ, तब इन्होंने भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

केवली जम्बूस्वामी का उपदेश 18 वर्ष तक मगध से लेकर मथुरा तक के प्रदेशों में निरंतर होता रहा और अन्त में उन्होंने चौरासी मथुरा से निर्वाण पद को प्राप्त किया।

अभ्यास प्रश्न

1. जम्बूकुमार का जन्म व निर्वाण स्थान का नाम बताइए।
2. जम्बूकुमार के माता-पिता का नाम बताइए।
3. जम्बूकुमार का किन चार कन्याओं के साथ विवाह हुआ था?
4. जम्बूकुमार ने किन से दीक्षा ली थी एवं उनके गुरु को कब निर्वाण हुआ था?
5. चोरों ने जम्बूकुमार के ज्ञान और वैराग्य से प्रभावित होकर क्या किया?

पाठ–15

1. जिनवाणी स्तुति

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी,
अविच्छिन्न धारा निज धर्म की कहानी ।। टेक ।।
जामें अति ही विमल, अगाध ज्ञानपानी।[1]
जहाँ नहीं संशयादि[2], पंक की निशानी।।१।।
सप्तभंग जहँ तरंग, उछलत सुखदानी।।[1]
संतचित मरालवृन्द[2], रमै नित्य ज्ञानी।।२।।
जाके अवगाहन , शुद्ध होय प्रानी।[2]
भागचन्द[1] निहचै[2], घटमाहिं या प्रमानी।।३।।

2. जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।। टेक ।।
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा पराया भासा, हो भानु के समानी।।१।।
षड् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी।।२।।
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे है मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी।।३।।
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोडूं नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेरी सानी।।४।।

श्री दिगम्बर जैन संस्कृति संस्थान, सांगानेर जयपुर
द्वारा संचालित
द्वादशवर्षीय श्रमण संस्कृति स्वाध्याय पाठ्यकम द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ सूची

सिद्धान्त प्रभाकर प्रथम वर्ष

कमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थ की राशि	ऐच्छिक ग्रन्थ	ग्रंथ की राशि
1	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग 1	15	वृहत् कथा कोष भाग 1	250
2	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग 2	16	वृहत् कथा कोष भाग 2	250
3	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग 3	17		
4	छहढाला	15		
	डाक खर्च	37	डाक खर्च	50

सिद्धान्त प्रभाकर द्वितीय वर्ष

कमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थ की राशि	ऐच्छिक ग्रन्थ	ग्रंथ की राशि
1	इष्टोपदेश	10	आदिपुराण भाग–1	600
2	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	14		
	डाक खर्च	30	डाक खर्च	50

सिद्धान्त प्रभाकर तृतीय वर्ष

कमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थ की राशि	ऐच्छिक ग्रन्थ	ग्रंथ की राशि
1	द्रव्य संग्रह	15	आदिपुराण भाग–2	500
2	पद्मनन्दि पंचविशतिका	400		
	डाक खर्च	50	डाक खर्च	50

सिद्धान्त विशारद प्रथम वर्ष

कमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थ की राशि	ऐच्छिक ग्रन्थ	ग्रंथ की राशि
1	तत्त्वार्थ सूत्र	80	उत्तर पुराण	500
2	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	30		
	डाक खर्च	40	डाक खर्च	50

प्राप्ति स्थान
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
द्वादशवर्षीय श्रमण संस्कृति स्वाध्याय पाठ्यकम
वीरोदय नगर,जैन नसियाँ रोड़ सांगानेर, जयपुर (राज.)
पिन कोड 302029 मो. 9785511105, 9785511102
Email: dssspjain@gmail.com
website: //jainshramansanskriti.com

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर
द्वारा संचालित

भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ सूची

क्रमांक	पुस्तक का नाम	मूल्य	क्रमांक	अन्य प्रकाशित पुस्तकें	मूल्य
1	जैन धर्म शिक्षा भाग–1	5	1	जिज्ञासा समाधान भाग 1	80
2	जैन धर्म शिक्षा भाग–2	7	2	जिज्ञासा समाधान भाग 2	70
3	जैन धर्म शिक्षा अंग्रेजी भाग–1	3	3	यापनीय संग	500
4	जैन धर्म शिक्षा अंग्रेजी भाग–2	4	4	आलाप पद्धति	74
5	बाल संस्कार भाग –1	20	5	तत्व निर्णय	16
6	बाल संस्कार भाग –2	20	6	जिनशासन की वास्तविक मान्यताएँ	18
7	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग –1	15	7	तत्वार्थ सूत्र में 'च' शब्द का विवेचन	10
8	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग –2	16	8	विद्यावाणी भाग–1	260
9	सिद्धान्त प्रवेशिका भाग –3	17	9	जिनवाणी सुधासागर भाग–1	200
10	छहढाला	15	10	सुधा के सागर	125
11	द्रव्यसंग्रह	15	11	आराधना कथा कोष	350
12	इष्टोपदेश	10	12	जिनपूजा	100
13	रत्नकरण्डक श्रावकाचार	14	13	विद्याधर से विद्यासागर	100
14	भक्तामर स्त्रोत	10	14	जिनवाणी सुधासागर भाग–2	200
15	मोक्ष शास्त्र	60	15	कर्तव्य पथ प्रदर्शन	50
16	बाल शिक्षा	15	16	पवित्र मानव जीवन	25
17	जिनेन्द्र पूजा	50	17	जैन दीपावली पूजन	30
18	प्रज्ञा प्रवेश	25	18	वैराग्य भावना	10
19	खेल–खेल में सीखे भाग –1	15	19	सामायिक पाठ अर्थ सहित	10
20	खेल खेल में सीखे भाग –2	15	20	श्री भक्तामर दीपार्चनम्	200
21	कुन्द कुन्द का कुन्दन	30	21	स्त्रोतावली	
22	वृषभादि तीर्थकर कलेण्डर		22	भक्ति संस्कार सौरभ	20
23	पंचपरमेष्ठी कलेण्डर		23	मानव धर्म	50
24	खेल–खेल में सीखे भाग –1(कलर बुक)		24	प्रश्नोत्तर संग्रह भाग 1	70
25	खेल में सीखे ज्ञान की बात (गेम बुक)		25	प्रश्नोत्तर संग्रह भाग 2	80

प्राप्ति स्थान
श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड
वीरोदय नगर, जैन नसियाँ रोड, सांगोनेर, जयपुर 302029
Whatsapp -8306876339, 9314030108, 8299781920,
Email - ssspathshala@gmail.com

हमारी पाठशाला है

हमें आचरण सिखलाती	....	हमारी पाठशाला है।
हमें व्यवहार सिखलाती	....	हमारी पाठशाला है।
हमें मंदिर बुलाती	....	हमारी पाठशाला है।
प्रभु दर्शन दिलाती	....	हमारी पाठशाला है।
छना पानी सदा पीना	....	सिखाती पाठशाला है।
कभी न रात को खाना	....	सिखाती पाठशाला है।
प्याज, आलू नहीं खाना	....	सिखाती पाठशाला है।
होटल में कभी ना जाना	....	सिखाती पाठशाला है।
आदर विनय बड़ों का करना	....	सिखाती पाठशाला है।
चरण छूकर नमन करना	....	सिखाती पाठशाला है।
पिता-माता की सेवा करना	....	सिखाती पाठशाला है।
आपस में कभी ना लड़ना	....	सिखाती पाठशाला है।
कभी ना अभिमान तुम करना	....	सिखाती पाठशाला है।
सदा पापों से तुम डरना	....	सिखाती पाठशाला है।
बुरी आदत न तुम लाना	....	सिखाती पाठशाला है।
मिले अच्छाई तो पानी	....	सिखाती पाठशाला है।
पालो सदा ही धर्म तुम अपना	....	सिखाती पाठशाला है।
हमें णमोकार है जपना	....	सिखाती पाठशाला है।
चलें सद्मार्ग पर कैसे	....	सिखाती पाठशाला है।
सही जैनी बनें कैसे	....	सिखाती पाठशाला है।
सदाचारी सदा बनना	....	सिखाती पाठशाला है।
कभी निन्दा नहीं करना	....	सिखाती पाठशाला है।
कभी चुगली नहीं करना	....	सिखाती पाठशाला है।
जिनवाणी को नित पढ़ना	....	सिखाती पाठशाला है।
गीत आतम के तुम गाना	....	सिखाती पाठशाला है।
कभी हिंसा नहीं करना	....	पाठ पढ़ना यहाँ आकर।
कभी न झूठ तुम कहना	....	पाठ पढ़ना यहाँ आकर।
न चोरी तुम कभी करना	....	पाठ पढ़ना यहाँ आकर।
बुरी दृष्टि ना तुम रखना	....	पाठ पढ़ना यहाँ आकर।
न आसक्ति अधिक रखना	....	पाठ पढ़ना यहाँ आकर।
देवपूजा सदा करना	....	बताती पाठशाला है।
गुरु सेवा में नित रहना	....	बताती पाठशाला है।
करो स्वाध्याय नित ही तुम	....	बताती पाठशाला है।
रहे संयम से जीवन में	....	बताती पाठशाला है।
करें तप हो सुखी जीवन	....	बताती पाठशाला है।
करें हम दान नित-प्रतिदिन	....	बताती पाठशाला है।
जहाँ सद्ज्ञान है मिलता	....	बताती पाठशाला है।
सभी को लगती है प्यारी	....	बताती पाठशाला है।
कभी ना भूलना इसको	....	बताती पाठशाला है।
बड़े उपकार हैं इसके	....	बताती पाठशाला है।

हमारी पाठशाला है, हमारी पाठशाला है।

संस्थान द्वारा संचालित प्रमुख गतिविधियाँ

☐ **श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान** – श्रमण संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु तथा संस्कारों के पल्लवन के साथ लौकिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा के विकास हेतु सन्त शिरोमणि पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी मुनिराज के आशीर्वाद से एवं निर्यापक श्रमण पूज्य मुनिपुंगव श्री 108 सुधासागर जी मुनिराज के सत्प्रेरणा में सितम्बर सन् 1996 में इस संस्थान को स्थापित किया गया, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियाँ –

☐ **महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास एवं महाविद्यालय** – इसमें दसवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्रों को चयन शिविर के माध्यम से प्रवेश देकर धार्मिक शिक्षा में निष्णात किया जाता है। पंचवर्षीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कनिष्ठ एवं वरिष्ठ उपाध्याय (11th - 12th) तथा शास्त्री (B.A.) त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम में सफलता के उपरान्त सम्पूर्ण भारत में मान्य विश्व विद्यालय की उपाधि प्रदान की जाती है चहुंमुखी विकास के लिए धार्मिक अध्ययन के साथ साथ कम्प्यूटर, वास्तु–ज्योतिष, अंग्रेजी एवं संस्कृत आदि विषयों की शिक्षा भी प्रदान की जाती है। समय–समय पर विशेष व्याख्यान एवं प्रतियोगी परीक्षा के लिए भी दिशा निर्देश दिये जाते है। यहाँ से प्राप्त उपाधि सरकार द्वारा आयोजित आई. ए. एस. और आर. ए. एस. जैसी किसी भी प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए मान्य है।

☐ **सन्त श्री सुधासागर बालिका महाविद्यालय एवं छात्रावास** – विश्व में सर्वप्रथम भगवान आदिनाथ के द्वारा प्रदत्त अपनी पुत्रियों को संस्कारित शिक्षा की परम्परा को सुरक्षित एवं वृद्धिंगत करने के लिए उपर्युक्त पाठ्यक्रम के समान ही बालिकाओं को भी शास्त्री की उपाधि के साथ विदुषी बनाया जाता है। इस आवासीय संस्था में मातृशक्ति को जागृत करते हुए उनके सर्वांगीण विकास के लिए धार्मिक एवं महाविद्यालय अध्ययन के साथ साथ संगीत नृत्यादि अन्य गतिविधियों में भी पारंगत किया जाता है।

☐ **भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षाबोर्ड** – पाठशालाओं के संचालन के माध्यम से ही हम अपनी संस्कृति और पहचान की रक्षा के साथ धर्मनिष्ठ आगामी पीढ़ी का निर्माण कर सकते हैं अतः पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर महाराज की सत्प्रेरणा से पूरे भारत में अनेक पाठशालाओं की स्थापना की गयी है। इन पाठशालाओं की गतिविधियों, पाठयक्रम, संचालन पद्धति आदि के नीति निर्धारण, समुचित मार्गदर्शन, तथा परीक्षा लेकर प्रमाण/उपाधि आदि का वितरण बोर्ड का उद्देश्य है, संप्रति इस बोर्ड से 615 पाठशालाएँ संबद्ध हैं, जिनमें लगभग 18000 शिक्षार्थी अध्ययनरत हैं।

☐ **आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला** – सर्व जनोपयोगी मूल आगम के ग्रन्थों का तथा अन्य शोधपूर्ण कृतियों का प्रकाशन करके उन्हें लागत मूल्यों में उपलब्ध कराना मुख्य उद्देश्य है, जिससे सर्वसाधारण स्वाध्याय का लाभ प्राप्त कर सके।

☐ **अन्य संस्थाओं का संचालन** – खनियाँधाना में संस्थान की पृथक् शाखा स्थापना के बाद देश की प्राचीन शिक्षण संस्थाओं के पुनरुद्धार हेतु श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर के अन्तर्गत बरुआसागर एवं अहार जी आदि संस्थाओं का संचालन किया जाता है, जिनमें धार्मिक शिक्षा के साथ साथ लौकिक शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

☐ **द्वादशवर्षीय श्रमण संस्कृति संस्थान पाठ्यक्रम** – समाज में बढ़ रहे मिथ्यात्व को दूर करने की पवित्र भावना से इस पाठ्यक्रम को पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की सत्प्रेरणा से संचालित किया गया है। बारह वर्ष के इस पाठ्यक्रम के माध्यम से क्रमानुसार आगम के चारों अनुयोगों का स्वाध्याय कराया जाता है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में परीक्षा लेकर उपाधि भी प्रदान की जाती है। यद्वा तद्वा भ्रमित समाज को स्वाध्याय निष्ठ बनाते हुये आगमानुसार धर्माराधन करने की प्रेरणा दी जाती है।

☐ **धार्मिक शिक्षण शिविर** – जैन संस्कृति के संरक्षण, सम्वर्द्धन तथा धर्म सिद्धान्तों का ज्ञान कराने के लिए बालक, युवाओं एवं प्रौढ़ सभी श्रावकों को धर्म में सम्यक श्रद्धा जागृत करने लिए देश के विभिन्न स्थानों पर समाज के अनुरोध पर धार्मिक शिविरों का आयोजन किया जाता है।

☐ **प्रवचन व्यवस्था** – दशलक्षणपर्व, आष्टाह्निका पर्व एवं अन्य धार्मिक पर्वों पर सम्पूर्ण भारत वर्ष के साथ विदेश में भी जैसे – अमेरिका, कनाडा, कुवैत, सिंगापुर आदि देशों में भी हमारे विद्वान ज्ञान का प्रसार करते हुए सम्यग्ज्ञान की पताका लहराते हैं।

☐ **विधि–विधान अनुष्ठान व्यवस्था** – पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा, शिलान्यास एवं समस्त विधि विधान एवं धार्मिक आयोजनों के लिये योग्य प्रतिष्ठाचार्यों, विधानाचार्यों एवं विद्वानों की व्यवस्था की जाती है।

☐ **सन्त सुधासागर पब्लिक स्कूल केन्द्रीय शिक्षा परिषद्** – वर्तमान में विद्यार्थी एवं उनके अभिभावक मिशनरी शिक्षा की तरफ बढ़ रहे हैं। धर्म और संस्कार हीन इस शिक्षा से हमारी मान्यताएँ खण्डित एवं आचार विचार दूषित होने लगे थे। इसी की रोकथाम के लिए धर्म तथा सुसंस्कारों के साथ गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान करने अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम वाले विद्यालयों की स्थापना की गयी जिनके सुसंचालन हेतु यह परिषद् गठित हुआ जिसमें लगभग तेरह विद्यालय सम्बन्ध हैं। जिसमें अधिकतर CBSE मान्यता प्राप्त हैं।

☐ **ऑनलाइन शिक्षण** – पूर्ण विश्व के जन जन को जिनवाणी और धर्माचरण से जोडे रखने के लिये युग की माँग के अनुरूप पूज्य गुरूवर मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रातः से सायं तक ऑनलाईन कक्षाओं का निरन्तर संचालन किया जा रहा है। जिसमें भारत और विदेशों के लगभग 15000 स्वाध्यायार्थी लाभान्वित हो रहे हैं।